मानस-मंथन

[भारतीय कालेजों और विश्वविद्यालयों
के लिए पाठ्यग्रंथ]

संकलनकर्ता
पं० बलदेवप्रसाद मिश्र
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्

नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ

१९३९]

[मूल्य २)

मुद्रक और प्रकाशक
श्रीकेसरीदास सेठ सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ

विषय-सूची

भूमिका-खंड

आराध्य-खंड

आराधक-खंड

आराधना-खंड

दो शब्द

प्रातःस्मरणीय संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' विश्व-विश्रुत ग्रंथ है। वह सिद्धांतग्रंथ है और वे सिद्धांत सार्वजनीन एवं सार्वकालिक हैं। यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ से सिद्धांतों का संकलन करना कोई साधारण बात नहीं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि रायगढ़ स्टेट के साहित्यानुरागी दीवान डॉ० पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्० ने बड़े विवेक, विवेचना तथा परिश्रम से इस 'मानस' ग्रंथ का मंथन किया है, जो 'मानस-मंथन' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। उनके 'कवि' की प्रखर प्रतिभा, 'समालोचक' की पैनी दृष्टि तथा गोस्वामीजी की कृतियों के विशेष अध्ययन ने उन्हें मानस का इतनी अच्छी तरह से मंथन करने में सहायता पहुँचाई है। बहुश्रुत विद्वान् होने के साथ-साथ मिश्रजी का संबंध हाईस्कूल और विश्वविद्यालय की पाठ्यपुस्तक-निर्धारिणी कमेटियों से आज लगभग पंद्रह-बीस वर्षों से है। वे आज भी नागपुर-विश्वविद्यालय की हिंदी-कोर्स-कमेटी के संयोजक हैं। अतएव संपूर्ण रामचरितमानस को उच्च कक्षाओं में पाठ्यग्रंथ स्वीकृत करने में क्या-क्या कठिनाइयाँ आती रही हैं अथवा आ सकती हैं, इसका उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होता रहा है। इधर हिंदी की कोई भी पाठ्यपुस्तक ऐसी नहीं है जिसमें गो० तुलसीदास की रामायण का कोई-न-कोई अंश न रहता हो। अतएव उन्हें इस बात की आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक था कि गोस्वामीजी की जिन रचनाओं अथवा अंशों से विद्यार्थिगण प्रारंभ से ही परिचित होते आ रहे हैं, उनके सिद्धांतों से भी वे आगे चलकर परिचित हो सकें ; तब कदा-

चित् उनका समझना पाठकमात्र के लिए अधिक सुखकर एवं सुगम हो जायगा। संभवतः इसी विचार ने 'रामचरितमानस' का मंथन करके यह संकलन तैयार करने की प्रेरणा उनमें उत्पन्न की। फलतः पाठ्यपुस्तक-निर्वाचकों की यह कठिनाई भी कि कौन-कौन-सा सोपान-विशेष इंटरमीडियट-बोर्ड तथा विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए निर्धारित किया जाय अथवा न किया जाय—'मानस-मंथन' के प्रकाशन से हल हो गई है। यह अकेली पुस्तक एक प्रकार से संपूर्ण रामचरितमानस का स्थानापन्न हो सकती है और इसी से गोस्वामीजी का सिद्धांतपक्ष बुद्धिगम्य हो सकता है। जिज्ञासु पाठक सुविधापूर्वक और संक्षेप में साहित्य और समाज के समन्वय का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। सारांश यह कि रामचरितमानस का पठन-पाठन जो लोग कथा-भाग के लिए नहीं--वस्तुतः सिद्धांतों को समझने के लिए करना चाहते हैं, उन्हें इस संकलन से बड़ी सहायता मिल सकती है। सिद्धांतों का मनन करने के पश्चात् यदि वे संपूर्ण रामचरितमानस का पारायण करें तो उन्हें अधिकाधिक आनंद मिल सकता है। पुस्तक उन सबके भी काम की है जो गोस्वामीजी की रामायण के प्रेमी हैं—अर्थात् भक्त और जिज्ञासु सभी के लिए है। विवेचक और समीक्षक बुद्धिवाले उच्च श्रेणी के छात्रों के लिए तो यह पुस्तक वही काम करती है जो काम दर्शनशास्त्र समझने के लिए सूत्र करते हैं।

आशा है, भिन्न-भिन्न इंटरमीडियट बोर्डों तथा विश्वविद्यालयों की हिंदी-पाठ्य-पुस्तक-निर्धारिणी समितियाँ इस संकलन को अपनाएँगी और छात्रों को गोस्वामीजी के सिद्धांतों के मनन करने का अवसर देंगी।

मातादीन शुक्ल
(माधुरी-संपादक)

प्राक्कथन

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी का रामचरितमानस संसार-प्रसिद्ध ग्रंथ है। वह हिंदू-संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट कोष है। काव्य की दृष्टि से भी वह अनुपम है, कथानक की दृष्टि से भी वह अत्यन्त रोचक है; परन्तु उसकी वास्तविक महत्ता उसमें निहित सिद्धान्तों के कारण है जो उसे इतने आदर की वस्तु बना रहे हैं। इन्हीं सिद्धान्तों से आकृष्ट होकर क्या हिन्दू, क्या मुसलमान और क्या ईसाई सभी उसे अपनाने की इच्छा किया करते हैं। महात्मा गांधी कहते हैं—"मैं तुलसीदासजी की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।" अब्दुर्रहीम खानखाना ने कहा है—"रामचरितमानस बिमल सन्तन जीवन प्रान। हिन्दुवान को बेद सम जमनहिं प्रगट कुरान।" सर जार्ज ग्रियर्सन लिखते हैं—"वह (रामचरितमानस) नौ करोड़ मनुष्यों की बाइबिल कहा गया है और उत्तर-भारत का प्रत्येक व्यक्ति उससे इतना अधिक परिचित है जितना विलायत का औसत दर्जे का किसान बाइबिल से भी परिचित न होगा।"

वस्तुस्थिति इस प्रकार की रहते हुए भी आश्चर्य है कि अभी तक, किसी सज्जन ने मानस का मन्थन करके समूचे सिद्धांतों का इस प्रकार का कोई संकलन नहीं किया जिससे तुलसी-मत हृदयङ्गम करने में लोगों को सुभीता हो जाता। किसी ने हाथी के पैर ही को सब कुछ समझ लिया और किसी ने पूँछ ही को। परन्तु मानस के असंख्य प्रेमियों, वाचकों और व्याख्याताओं की परम्परा विद्यमान रहते हुए भी किसी ने समूचे हाथी का नक़शा अब तक खींचकर सामने नहीं रख दिया। यही कारण है कि कोई गोस्वामीजी को अद्वैतवादी कह रहा है तो कोई विशिष्टाद्वैतवादी, कोई उन्हें शैव कह

रहा है तो कोई वैष्णव, कोई उन्हें कुछ कह रहा है तो कोई कुछ; और सब कोई अपने-अपने कथन की पुष्टि में मानस ही की पंक्तियाँ उद्धृत करते चले जा रहे हैं। कारपेण्टर महोदय ने "थियोलोजी आफ़ तुलसीदास" लिखकर इस ओर कुछ प्रयत्न किया है और इस परिश्रम के लिए वे "डाक्टर आफ़ डिविनिटी" की उत्तम उपाधि से पुरस्कृत भी हुए हैं; परन्तु उस पुस्तक को पढ़कर कोई भी विचारशील व्यक्ति कह उठेगा कि उनका प्रयत्न बच्चों का सा ही है। ऐसे सज्जन तो अनेक हैं जिन्होंने तुलसीदासजी के काव्यकौशल की चर्चा करते हुए उनके सिद्धांतों का भी दिग्दर्शन करा दिया है। मैं जानता हूँ कि उनमें से अनेक लेखक तुलसी-मत को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर चुके हैं। परन्तु उस मत का इस प्रकार दिग्दर्शनमात्र करा देना और बात है, तथा उसका साङ्गोपाङ्ग स्पष्टीकरण कर देना बिलकुल और ही बात है।

समष्टि रूप में तुलसी-मत का दर्शन करने के लिये यह आवश्यक था कि मानस की वे समूची पंक्तियाँ छाँटकर अलग कर ली जायँ जिनमें किसी न किसी तरह किसी न किसी सिद्धांत की बात आ रही हो अथवा यों कहिये कि जिनमें कोरा काव्यकौशल अथवा कोरा कथानक ही न हो। मेरे मन में एक दिन ऐसी ही तरंग आई और मैंने इस कार्य को प्रारंभ कर दिया। सौभाग्य से बाबू रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित और हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के सस्ते संस्करण की एक प्रति दारजीलिंग में मेरी एकान्तसङ्गिनी बन गई थी। उससे ही मुझे इस दिशा में प्रोत्साहन मिला था और वही इस काटछाँट के लिये मुझे सर्वथा उपयुक्त भी जान पड़ी थी। इसलिये मैंने उस ग्रंथ की अनेक प्रतियाँ मँगाकर दिमाग़, क़ैंची, क़लम, पेन्सिल आदि की मदद से पंक्तियाँ छाँटना प्रारंभ कर दिया। कई आवृत्तियों के अनन्तर मैंने लगभग तीन हज़ार पाँच सौ पंक्तियाँ छाँटकर अलग कर लीं। इतनी पंक्तियों की इस

विशाल सामग्री को मैंने स्वतंत्र क्रम से जमाना प्रारंभ किया। जैसे-जैसे मैं इस ओर प्रयत्न करता गया वैसे ही वैसे परमात्मा की कृपा और श्रीगोस्वामीजी के आशीर्वाद से मानव-धर्म के सर्वथा अनुकूल परम रम्य भारतीय भक्तिशास्त्र का नक़शा स्पष्ट होता गया और उस नक़शे के—उस डिज़ाइन के—भीतर पंक्तियों की वह समग्र सामग्री समाती चली गई। इस तरह धीरे-धीरे मैंने देखा कि जिस "तुलसी-मत" की मैं खोज कर रहा था वह तो साङ्गोपाङ्ग दिव्य भक्तिशास्त्र है जो भारतीय होकर भी सार्वभौम और सर्वधर्मसमन्वयकारी है तथा उस भक्तिशास्त्र के भव्य भवन के निर्माण के लिये जो कुछ सामग्री चाहिये थी वह सब रामचरितमानस में इस प्रकार विद्यमान है कि यदि उससे वह भवन बनाया जावे तो न तो उस भवन के किसी प्रधान अङ्ग में ही असामञ्जस्य आने पावेगा और न कोई सामग्री ही शेष रह जावेगी।

तुलसीमत—गोस्वामीजी का भक्तिसिद्धान्त—समग्र मानसरोगों की रामबाण दवा है। दवा आख़िर दवा ही ठहरी। लोग जिस तरह कुनैन को सुग्राह्य बनाने के लिये उस पर शक्कर का लपेट दे देते हैं उसी प्रकार गोस्वामीजी ने भी अपनी पेटेन्ट दवा पर पीयूष का दोहरा लपेट लगा दिया है। एक लपेट है रामकथा-सुधा का और दूसरा है काव्यामृत का। इन लपेटों के कारण तुलसी-सिद्धान्त के भव्य भवन का मलमा अनायास ही सहृदय सज्जनों के मन में घर करता चला जाता है और अलक्षित भाव से वही विशाल भवन के रूप में परिणत हो जाता है जिसकी रूपरेखा का स्पष्ट बोध न रखते हुए भी वे सज्जन आतप और वर्षा के उत्पातों से त्राण पाते हुए उसके भीतर पैठकर शीतल छाया का आनन्द उठाते रहते हैं। इसी लिये गोस्वामीजी ने अपने मानस को शास्त्र का रूप नहीं दिया परन्तु आजकल ज़माना विज्ञान का है। इसलिये जिज्ञासु लोग लपेट के आवरण को दूरकर असली चीज़ भी जान लेना चाहते

हैं। यदि मानस वास्तव में भक्तिशास्त्र का ग्रंथ है तो उस शास्त्र का असली रूप भी स्पष्ट हो जाना चाहिये। इसी लिये मैंने गोस्वामी-जी की इच्छा के विरुद्ध यह दुःसाहस किया है और दवा को उसके असली रूप में देखने और दिखाने की चेष्टा की है। संभव है, कुछ उपयुक्त पंक्तियां मुझसे फिर भी छूट गई हों अथवा यह भी संभव है कि मैंने ये सामग्रियाँ किसी ऐसे नक़शे में जमा दी हैं जो गोस्वामी-जी की अभीष्ट रूपरेखा से भिन्न है। मनुष्य आखिर मनुष्य ही है, इसलिये अपनी अपूर्णताओं के सम्बन्ध में मुझे लज्जा नहीं। मेरे प्रयत्न में पूर्ण सफलता आई या नहीं, यह दूसरी बात है। परन्तु यदि जान पड़ा कि प्रयत्न सन्मार्ग की ओर हुआ है तो उतने ही से मैं अपने को कृतकृत्य समझ लूँगा। इस प्रयत्न से एक बड़ा लाभ तो होगा ही और वह यह कि तुलसी-मत को समझने के लिये पाठक अब गोस्वामी तुलसीदासजी ही की पंक्तियाँ पढ़ लेंगे; उन्हें आलोचकों का सहारा न ढूँढ़ना पड़ेगा। इतना लाभ कुछ कम नहीं है।

मुझे तो अपने इस प्रयत्न से अवश्य ही बहुत लाभ पहुँचा है। आध्यात्मिक लाभ की बात जाने दीजिये। वह तो मन की बात है, रहस्य की बात है। व्यावहारिक लाभ भी मुझे कुछ कम नहीं हुआ; क्योंकि जिस "तुलसी-दर्शन" नामक थेसिस (ग्रंथ) पर मुझे नागपुर-विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि—डी० लिट्—की उपलब्धि हुई है वह इन्हीं पंक्तियों के इस नक़शे पर आश्रित था जो आज "मानस-मन्थन" नाम से पाठकों के सम्मुख है। इसी मन्थन का परिणाम है वह नवनीत—वह तुलसी-दर्शन—जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है। मित्रों, परीक्षकों और आलोचकों का आदेश हुआ कि नवनीत का आधारभूत यह दुग्ध भी तो प्रकाश में लाया जाय। पं० मातादीनजी शुक्ल ने इस विषय में विशेष उत्साह दिखाया। उनके प्रयत्न से श्रीनवलकिशोर-

प्रेस के सञ्चालक महोदयों ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया और श्रीपं० रूपनारायणजी पाण्डेय ने प्रूफरीडिंग आदि के झमेलों से मुझे बचाकर इस ग्रंथ को इस सुन्दर रूप में पाठकों के सम्मुख रख ही दिया।

"मानस-मंथन" चार खण्डों में विभक्त है। पहला है विषय-प्रवेश अथवा भूमिकाखण्ड, दूसरा है आराध्यखण्ड, तीसरा है आराधक-खण्ड और चौथा है आराधनाखण्ड। प्रत्येक खण्ड दो-दो उपखण्डों में विभक्त है जो पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के नाम से अभिहित हुए हैं। भूमिकाखण्ड के पूर्वार्ध में विषय-विवेचन है और उत्तरार्ध में ग्रंथ-माहात्म्य। आराध्यखण्ड के पूर्वार्ध में भगवान् राम की चर्चा है और उत्तरार्ध में अन्य देवों की। आराधकखण्ड के पूर्वार्ध में विविध जीवों का विवेचन है और उत्तरार्ध में सुकृतियों की भावनाएँ हैं। आराधनाखण्ड के पूर्वार्ध में विरति और विवेक का साङ्गोपाङ्ग निरूपण है तथा उत्तरार्ध में हरि-भक्ति-पथ का। मैंने इस ग्रंथ में अपनी ओर से जो वाक्य रखे हैं वे केवल संकेतमात्र समझे जायँ। उनका प्रायः प्रत्येक शब्द गोस्वामीजी की पंक्तियों के आधार पर है।

भूमिकाखंड को पढ़ने से विदित हो जायगा कि यद्यपि गोस्वामीजी अपने अति मंजुल भाषानिबन्ध को काव्य-कसौटी पर कसा हुआ खरा प्रासादिक काव्य पाते हैं तथापि उसकी असली महत्ता, उनकी दृष्टि में, काव्य-चमत्कार के कारण नहीं किन्तु राम-कथा के कारण है। यह रामकथा लोककल्याण के—"सब कर हित"—दृष्टिकोण से लिखी गई है, इसी लिये इसमें (१) श्रुति-सिद्धान्त का निचोड़ रखा गया है, (२) दार्शनिक प्रश्नावलियाँ गुंफित की गई हैं तथा (३) व्यासससमासपद्धति के अनुसार यथामति अनूप बातें कही गई हैं जिनसे मन को प्रबोध हो, वाणी पवित्र हो, त्रास और दुःख दूर हों तथा अन्तस्तम की शान्ति हो। इस कथा के आदि-मध्य-अवसान में प्रभु भगवान् राम ही प्रतिपाद्य हैं। अतः स्पष्ट है कि इस कथा में इतिहास का—कोरे कथाभाग का—कोई प्राधान्य नहीं।

यह कथा "निज संदेह-मोह-भ्रम-हरनी" है अतः संशयोच्छेदक होने के कारण निश्चय ही यह एक शास्त्र-ग्रंथ है। अब चूँकि यह भक्ति-मुक्ति और कृतकृत्यता देनेवाला है, इसलिये निश्चय ही इसे भक्ति-शास्त्र का ग्रंथ कहना चाहिये। यही कारण है कि इसके वक्ता, श्रोता, अधिकारी और पात्र (वर्ण्य जीव) सब भक्त ही भक्त हैं। [वक्ता-श्रोता की पंक्तियाँ पढ़कर अनायास ही समझ में आ जायगा कि मानस के चार घाट ज्ञान, कर्म, भक्ति और दैन्य के नहीं वरन् आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी के हैं तथा पात्र की चर्चा पढ़कर समझ में आ जायगा कि गोस्वामीजी ने उर्मिला आदि विषयक उदासीनता क्यों दिखाई।] यही कारण है कि गोस्वामीजी ने इसे सन्तों का सर्वस्व बताते हुए इससे विहीन मनुष्यों का जीवन दयनीय माना है। यही कारण है कि इसकी रचना के मूल में हरि-प्रेरणा का और फल में भजन-प्रभाव का उल्लेख किया गया है।

आराध्यखण्ड में भगवान् राम ही सब कुछ हैं। आराध्य के विवेचन से—"राम कवन" से—तो इस भक्तिशास्त्र का विषय ही प्रारंभ होता है। गोस्वामीजी ने आराध्य को राम-रूप में ही देखा है; क्योंकि राम ही उनके इष्टदेव थे। इन राम के ब्रह्मत्व का, विष्णुत्व का और मनुष्यत्व का, गोस्वामीजी ने बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया है। [बात यह है कि ज्ञान, क्रिया और भावपक्ष के अनुसार ही मनुष्य में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भावनाएँ रहा करती हैं। इन तीनों भावनाओं के अनुसार ही मनुष्य लोग क्रमशः निराकार, नराकार और सुराकार आराध्य चाहा करते हैं। केवल निर्गुण राम साम्प्रदायिक सन्तों को ही पसन्द हो सकते हैं, केवल सगुण राम साम्प्रदायिक वैष्णवों को ही और केवल मर्यादापुरुषोत्तम राम भौतिक विज्ञानियों अथवा नास्तिकों को ही। आराध्य की पूर्णता तो तभी होगी जब उनका यह त्रैविध्य पूरा हो। तुलसी के राम इसी लिये अपूर्व और अद्वितीय हैं।]

राम ब्रह्म हैं—परमात्मा हैं—यह बात गोस्वामीजी ने अनेक स्थलों में स्पष्ट की है। मानस का आदिम प्रश्न ही इस विषय से प्रारंभ होता है। गिरिजा ने राम को मनुष्य समझकर प्रश्न किया। उत्तर में शङ्करजी तर्क को नहीं वरन् विश्वास को प्रधानता देते हुए राम में ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते दिखाई देते हैं। राम निराकार ब्रह्म भी हैं और साकार ब्रह्म भी। निराकार होकर वे (१) सर्वव्यापी हैं, (२) गुणातीत हैं और (३) परम शक्तिशाली हैं। साकार होकर भी वे अद्वितीय हैं। वे तो सब कहीं विद्यमान हैं इसलिये "उत्पन्न" न होकर "प्रगट" हुआ करते हैं। निराकार ब्रह्म साकार (१) क्यों बनता है और (२) कैसे बनता है, इस पर गोस्वामीजी ने बड़ी सुन्दर पंक्तियाँ कही हैं। "क्यों" के उत्तर में तो वे कहते हैं कि भगवान् अपने भक्तों के लिये लीलातनु धारण कर लिया करते हैं। [यही बात यों कही जा सकती है कि भक्त लोग अपनी भावना के अनुसार भगवान् के सगुण-रूप की कल्पना कर लिया करते हैं।] "कैसे" के उत्तर में वे कहते हैं कि जिसके हृदय में भक्ति और प्रेम का जितना अधिक और जिस प्रकार का बल होगा उसके समक्ष उतनी ही मात्रा में और उसी प्रकार प्रभु का प्रादुर्भाव भी होगा। [यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि किसी भी काल्पनिक रूप पर यदि पूर्ण मनोयोग दिया जाय तो उसका प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। जब जीव ब्रह्म का अंश है तब जीव के काल्पनिक लीलातनु को यदि हम ब्रह्म का काल्पनिक लीलातनु कह दें तो कोई बुराई की बात नहीं हो जाती।]

राम विष्णु हैं—"शचीपतिप्रियानुज" हैं—यह बात गोस्वामीजी ने स्तुतियों आदि के कई प्रसङ्गों पर लिखी है। राम के पूर्व रूप और अवतारों में उन्होंने केवल वैष्णवभाव को प्राधान्य दिया है। [इसका कारण है। दाशरथि राम में—मर्यादापुरुषोत्तम राम में—उन्होंने पूर्वाचार्यों की परम्परा के अनुसार परब्रह्म की वही छटा देखी

थी जो वैष्णवभाव से—जगत्पालकभाव से—उनके पास आई थी ।] गोस्वामीजी के राम विष्णु के पूर्ण अवतार और आधिदैविक भाव के कारण निश्चय ही अतिमानवी शक्ति रखते हैं । उनकी इस महत्ता को सूचित करने के लिये (१) संसार के पाँचों तत्वों पर, (२) समस्त जड़तत्त्व पर और (३) जीवतत्त्व पर उनका आधिपत्य दिखाया गया है । परन्तु वैष्णवभाववाले होते हुए भी राम अनेक कल्प के करोड़ों विष्णुओं की शक्ति रखते थे । इसलिये गोस्वामीजी ने त्रिदेवों तथा पञ्चदेवों में सम्मिलित करके विष्णु को न केवल राम का भक्त ही बताया है वरन् उनकी शक्ति के आगे इन्हें (विष्णु को) नीचा दिखाने में भी नहीं हिचके हैं । [अवतार से—मनुष्य से—ऊँचा दर्जा देवता का—विष्णु का—है और देवता से ऊँचा दर्जा ब्रह्म का है । परन्तु एक ही व्यक्ति अवतार भी, विष्णु भी और ब्रह्म भी हो सकता है । ठीक उसी तरह जैसे एक राजा अपनी सेना का सेनापति भी हो सकता है और चाहे तो उस सेना का एक सिपाही भी । सिपाही की हैसियत से तो वह सेनापति का मातहत—सेनापति से शक्ति पानेवाला—कहा जायगा और राजा की हैसियत से, वह सिपाही जान पड़नेवाला जीव अपने सेनापति का भी शक्तिदाता—सेनापति का भी अफ़सर—माना जायगा ।]

"राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं" यह तो गोस्वामीजी की स्पष्ट उक्ति है ही । आकृति और प्रकृति दोनों दृष्टियों से राम आदर्श पुरुष हैं । उनकी आकृति के सौंदर्य और प्रकृति की शक्ति तथा शील की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । उनके शारीरिक सौंदर्य के विषय में "सतपंच" चौपाइयाँ तो प्रसिद्ध हैं ही । वह उन्हीं का सौंदर्य था जिसने नर और पशु, शिष्ट और दुष्ट सभी पर अपनी मोहिनी डाल दी थी तथा अभक्तों को भी भक्त बना दिया था । हद हो गई कि उन्हें देखकर रास्ते के साँप-बिच्छू भी अपनी तामस

प्रकृति त्याग दिया करते थे। इसी लिये तो विभिन्न दार्शनिक भावनाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से गोस्वामीजी ने उनके सौंदर्यमय वपु का ध्यान किया है। अद्वैतमतानुसार वे कभी केवल रामचन्द्र का ध्यान करते हैं और "बालकरूप राम" के ध्यान पर विशेष ज़ोर देते हैं तथा [कर्म और ज्ञान के द्योतक] धनुष और बाण धारण करनेवाले द्विभुजरूप के आगे चतुर्भुजरूप को भी पसंद नहीं करते। द्वैताद्वैत या द्वैतमतानुसार कभी वे सीतासहित राम का ध्यान करते हैं। विशिष्टाद्वैत या त्रैतमतानुसार वे कभी सीता (अचित्) और लक्ष्मण (चित्) सहित (विशिष्ट) राम का ध्यान करते हैं तथा रामरहस्योपनिषद् आदि के मतानुसार कभी वे भगवान् का साङ्गोपाङ्ग—सपार्षद—ध्यान करने लग जाते हैं। राम की आकृति से भी बढ़कर राम की प्रकृति का वर्णन किया गया है। उनके गुण-कर्म-स्वभाव अद्वितीय हैं। उनके गुणों की तो कोई संख्या ही नहीं। वे सब जगन्मङ्गलकारी हैं। उनके कर्मों की कोई सीमा नहीं। वे सब ही अनुकरणीय हैं। उनके स्वभाव के माधुर्य की कोई थाह नहीं। वह अत्यन्त कोमल, अत्यन्त उदार, अत्यन्त कृपाशील, परम रक्षक और परम शरण्य हैं। जो निश्छल मन से विशुद्ध प्रेम लेकर उनकी ओर बढ़ेगा वह अवश्य ही उनके द्वारा अपना लिया जावेगा। उन्होंने तो अभक्तों को भी सद्गति दे दी। फिर भक्तों का तो कहना ही क्या है।

गोस्वामीजी का आराध्य, जैसा कि पहिले कहा गया है, न तो केवल निराकार है, न केवल सुराकार और न केवल नराकार है वरन् उसमें तीनों का समन्वय है। वह नर भी है और नारायण भी है। पाठकों को इस बात का बराबर ध्यान रहे, [जान पड़ता है] इसी लिए गोस्वामीजी श्रीरामचन्द्रजी की ईश्वरता की ओर बारम्बार सङ्केत करते गये हैं। यदि दूसरों की बहादुरी का प्रसङ्ग आया तो वहाँ भी उन्होंने रामप्रताप को महिमा दी है। यदि राम के चरित्र में कठोरता का

प्रसङ्ग आया तो यही कहकर रह गये कि "चित्त खगेस रामकर समुझि परै कछु काहि ॥" परन्तु यदि रामचरित्र में श्रोताओं को शङ्का करते देखा तो उन्हें करारी डाँट-फटकार बताने में चूके नहीं। इतना करते हुए भी उन्हें मानना पड़ा है कि नरचरित्र में ईश्वर-चरित्र की पूर्णता का रहस्य समझ लेना या समझा देना आसान नहीं। उनका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि नर में यदि मनुष्य नारायण को पाना चाहता है तो उसे तर्क का नहीं वरन् श्रद्धा का सहारा लेना चाहिये। इसी लिये तो गिरिजा के तर्कपूर्ण प्रश्न का उत्तर शंकरजी ने श्रद्धा और विश्वास के शब्दों में दिया है। [मनुष्य ऐतिहासिक जगत् का जीव है, देवता काल्पनिक जगत् का व्यक्ति है और ब्रह्म दार्शनिक जगत् की सत्ता है। इन तीनों का समन्वय भली भाँति तभी हो सकता है जब तर्क के साथ अनुभव का—श्रद्धा और विश्वास का—भी मेल हो । कोरे तर्क से यह काम नहीं हो सकता।]

आराध्य के तीनों रूपों के—मनुष्य, देवता और ब्रह्म के—समन्वय का सर्वोत्तम आधार है "नाम"। परमात्मा के एक नाम में उसके इन तीनों रूपों का समावेश हो जाता है। परमात्मा को पाने के लिये या तो रूप का सहारा लिया जाता है या नाम का। इन दोनों सहारों में नाम का सहारा प्रत्यक्ष ही श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें सभी रूपों का अन्तर्भाव और स्पष्टीकरण होता रहता है। ब्रह्मराम, विष्णुराम और राजाराम का, चूँकि एक ही नाम में समावेश हो जाता है इस-लिये रामनाम अपने नामियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । केवल मात्र नाम के भजन से निर्गुण और सगुण दोनों भावनावाले अपनी भावनाओं के अनुसार नामी के अधिकाधिक निकट होते चले जाते हैं। इसी विचार से गोस्वामीजी ने रामनाम की बहुत महिमा गाई है। अन्य नामों की अपेक्षा इस नाम में कुछ विशेषताएँ भी हैं जिनका गोस्वामीजी ने अच्छे ढंग से उल्लेख कर दिया है। [जब

कि परम लघु मंत्र भी "विधि हरि हर सुर सर्व" को वश करा देता है तब फिर इस रामनामरूपी महामंत्र की शक्ति और विशेषता के विषय में पूछना ही क्या।]

आराध्यखण्ड के उत्तरार्ध में अन्य देवों की चर्चा है। यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि गोस्वामीजी ने अन्य देवों, सन्तों, ब्राह्मणों और बड़े-बूढ़ों का मान रखते हुए भी राम ही की ओर अनन्य भक्ति दिखाई है। दूसरों को वे केवल राम के नाते ही सम्मान देते हैं। तीनों भाइयों के साथ मिलकर राम का चतुर्व्यूह बन जाता है और सीताजी को मिलाकर पञ्चायतन। इन सबको भगवान् राम के विशिष्ट अङ्ग ही समझना चाहिये। इन सबमें सीताजी और भरतजी का विशेष वर्णन हुआ है। सीताजी के तो आधिभौतिकरूप (मानवीरूप), आधिदैविकरूप (लक्ष्मी का अवतार) और आध्यात्मिकरूप (दिव्य शक्ति की छटा) का भी अच्छा द्योतन है। मानवीरूप में उनकी बाह्य छवि और आन्तरिक छवि दोनों दर्शनीय हैं। आध्यात्मिकरूप में वे न केवल आदिशक्ति (माया) का अवतार कही गई हैं वरन् परमशक्ति (भक्ति) का भी अवतार बताई गई हैं। भक्ति ही राम की परम प्रिया अतएव परम शक्ति है। उसके आगे माया नर्तकी के समान है। भक्ति का अवतार होने के कारण ही सीताजी की वन्दना सर्वश्रेयस्करी के रूप में की गई है। इसी प्रकार भरत के वर्णन में भी विशेषता है। भक्त का सच्चा रूप गोस्वामीजी के "भरत" में प्रस्फुटित हुआ है। जान पड़ता है इसी लिये वे 'मानवता की सीमा में ही आबद्ध किये गये हैं—उनका आधिदैविक और आध्यात्मिकरूप नहीं बताया गया। परन्तु इस प्रकार आबद्ध किये जाकर भी वे "राम की परछाहीं" कहे गये हैं। लक्ष्मणजी को गोस्वामीजी ने शेषावतार मानते हुए भी सर्वज्ञ नहीं माना। [यहाँ शेष का अभिप्राय बहुत करके जीवशक्ति ही से है।] शत्रुघ्नजी का वर्णन बहुत थोड़ा है क्योंकि रामचरित्र से इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध बहुत कम

है। फिर भी इन्हें भगवान् का कनिष्ठ भ्राता और भक्त जान गोस्वामीजी ने इनका भी भक्तिपूर्वक स्मरण किया है। भगवान् के चतुर्व्यूह में चारों ही की पूरी महिमा है। यह अवश्य है कि भक्तों के प्रसङ्ग में कभी-कभी भगवान् उन्हें लक्ष्मण और भरत से भी अधिक मान दे देते हैं। [परन्तु ऐसी पंक्तियों में कृतज्ञता की भावना ही का ज़ोर अधिक समझना चाहिये ।]

त्रिदेवों और पञ्चदेवों का भी उल्लेख गोस्वामीजी ने श्रद्धापूर्वक किया है। त्रिदेवों की तो उन्होंने स्पष्ट वन्दना की है और पञ्चदेवों का उल्लेखमात्र किया है। हाँ, प्रथम पूजा के अधिकारी होने के नाते इन्होंने विनायक की वन्दना अवश्य ही कुछ विशेष रूप से की है। साथ ही उन्होंने ग्रन्थारंभ में वाणी की भी वन्दना की है। लोक मर्यादा, कविमर्यादा और भक्तिमर्यादा के अनुसार उन्होंने इसी प्रकार अनेक देवों की वन्दना की है जिनमें हनुमान्‌जी का स्थान बहुत प्रधान है; यद्यपि ये रामचरितमानस में स्पष्ट रूप से शंकरावतार नहीं कहे गये हैं। गोस्वामीजी के मतानुसार देवताओं में पिता-पुत्र आदि के नाते बड़ाई-छुटाई नहीं है। उनके ब्रह्माजी [पिता होकर भी अपने पुत्र] शिवजी को मान दे रहे हैं और शिवजी गणेशजी को। हाँ, इन्द्रादिक वैदिक देवों की ओर गोस्वामीजी ने बहुत कम श्रद्धा दिखाई है। परन्तु प्राचीन पूज्यत्व के नाते उन्होंने इनकी मान-रक्षा भी कर दी है। उन्होंने इनके तीन प्रशस्य कार्यों का उल्लेख किया है और राम की इनसे तुलना देकर इनकी गौरववृद्धि कर दी है। इतना ही नहीं, उन्होंने इनके मुँह से यह कहाकर कि राम तो हर्ष-विस्मय से रहित स्ववशविहारी हैं और दशरथादि जीव अपने-अपने कर्मवश सुख-दुख के भागी होनेवाले हैं, इन्हें वनगमन-विषयक दोष से मुक्त भी कर दिया है। इन्हें फटकारने का कारण शायद यह है कि प्राचीन ग्रंथों में ये योगी नहीं किन्तु भोगी और अतएव विषयी के रूप में ही विशेष रूप से चित्रित किये गये हैं। [मनुष्यों

के लिये ऐसा आदर्श—ऐसा आराध्य—रहना गोस्वामीजी के समान आर्य-संस्कृति-संस्थापक समाजसेवी को कब रुचिकर हो सकता था ?]

त्रिदेव और पञ्चदेव सबके सब ही राम के भक्त बताये गये हैं जैसा कि पहिले कहा जा चुका है। इन देवों में भवानी और शंकर का महत्त्व विशेष है [क्योंकि गोस्वामीजी के कथनानुसार शंकर तो वैष्णवाग्रगण्य हैं और भवानी के कारण रामकथा का इस संसार में प्रचार हुआ तथा ये भगवान् शङ्कर का आधा अङ्ग ही हैं। असल में तो शैवों और शाक्तों का दर्जा वैष्णवों से किसी तरह कम नहीं था और उन दोनों मतों के अधिष्ठाता देव होने के कारण शंकर और देवी—भवानी—स्वतंत्र रूप से महत्त्वपूर्ण थे।] इसी लिये गोस्वामीजी ने इन दोनों का सीता और राम के साथ तादात्म्य ही सा बता दिया है। ये दोनों भी माया और भगवान्—जगन्माता और जगत्-पिता—कहे गये हैं। शंकर भी राम की तरह जगद्व्यवस्था के संरक्षक हैं। ब्रह्म को शंकर अथवा रामरूप से भजना भक्त के मन पर निर्भर है। यदि शंकर को भिन्न देव भी माना जाय तो भी उनसे द्रोह करना सदैव अनुचित है।

[इन सब आराध्यों के चरित्रों पर विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि एकदम निर्दोष-पूर्ण और विशद चरित्र रामचरितमानस में केवल चार के ही हैं। वे चार हैं राम, सीता, भरत और शंकर। ध्यान से देखा जाय तो विदित होगा कि ये चार क्रमशः भगवन्त, भक्ति, भक्त और गुरु के प्रतीक हैं। इस सम्बन्ध में नाभादासजी की इस उक्ति पर ध्यान रखकर कि "भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक" इन चरित्रों का अध्ययन किया जाय तो निश्चय ही विशेष आनन्द की प्राप्ति होगी।]

आराधकखण्ड में पहिले तो त्रिविध जीवों की चर्चा है फिर सन्त-असन्तों की और फिर भक्तों की। त्रिविध जीव हैं—विषयी, स धक और सिद्ध। गोस्वामीजी इन तीनों को आराधक बने रहने

की सलाह देते हैं। विषयी लोग पक्के संसारी हैं इसलिये नियति से ख़ूब जकड़े हुए हैं। उन्हें उच्छृङ्खलता का कोई अधिकार नहीं। परन्तु वे [अपने जीवधर्मवश अथवा यों कहिये कि अविद्यामाया-वश या मूर्खतावश] उच्छृङ्खलता कर ही बैठते हैं और दुःख उठाते हैं। [जो अपने मानसरोगों को न पहिचाने या न पहिचानना चाहे वह विषयी है और जो पहिचान ले वह साधक है। जो पहिचानकर उन रोगों को दूर कर डाले, वही सिद्ध है।] साधक लोगों के सम्बन्ध में गोस्वामीजी मानसरोग की सुन्दर बातें कहते हैं ताकि वे आसानी से अपनी साधना में—अपनी रोगमुक्ति में—कृतकार्य हो सकें तथा सिद्ध जीवों के—कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तियोगी के—वे सुन्दर नमूने पेश कर देते हैं। गोस्वामीजी ने साधक को सत्संग करने और असत्संग से दूर रहने की सलाह बड़े ज़ोरदार शब्दों में दी है तथा " संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने " की नीति के अनुसार सन्त और असन्त के लक्षण भी विस्तार के साथ बता दिये हैं। एक साधु की हैसियत से तो वे दोनों की वन्दना ही करते हैं।

असन्तों में सबसे बड़ा असन्त रावणरूपी अपना महामोह ही है जो दसों भोगसाधनों से—सुख, सम्पत्ति, सुत, सेन, सहाई, जय, प्रताप, बल, बुद्धि, बड़ाई से—त्रैलोक्यविजयी सा बना बैठा है; राम-रावण-युद्ध को ही भगवत्-कृपा और अविद्या का संघर्ष अथवा भगवान् और शैतान की लड़ाई कहा जा सकता है। जब तक जगत् की लीला है तब तक इस द्वन्द्व का अन्त नहीं। फिर मानव असन्त भी अनेक प्रकार के हैं। इनमें (१) राक्षस, (२) दुर्जन, (३) खल और (४) द्रोही की तो पर्याप्त चर्चा है। साथ ही कुछ अन्य असन्तों का भी उल्लेख है। रहे सन्त, सो इनके विषय में गोस्वामीजी ने बहुत कुछ कहा है। सन्तों में उन्होंने दो विशिष्ट प्रकार के सन्तों का उल्लेख किया है। एक तो हैं सद्गुरु और दूसरे हैं ब्राह्मण। वे

उसे ही गुरु कहते हैं जो शिष्य का शोक हरे, धन नहीं, अन्यथा वह गुरु कुगुरु या नारकी कहाने योग्य है। गुरु की प्रबल महिमा बताते हुए भी वे कहते हैं कि मूर्ख के हृदय में बिरला ही गुरु सद्ज्ञान का प्रकाश करा सकता है [अतएव गुरु से बढ़कर भगवत्-कृपा ही को वे प्राधान्य देते हैं।] ब्राह्मणों के सत्कार के लिये भी वे बारम्बार सलाह देते हैं। [क्योंकि गुरु की भाँति ब्राह्मण दुर्लभ नहीं और परम्परागत आर्यसंस्कारों के कारण वह कुछ हद तक गुरु का स्थानापन्न भी आसानी से हो सकता है।] यद्यपि उनके विचार में भक्तिहीन ब्राह्मण की अपेक्षा भक्तियुक्त शूद्र अच्छा है, परन्तु फिर भी श्रद्धा की पुष्टि के लिये वे निकृष्ट ब्राह्मण और वेषधारी साधू बाबा लोगों तक को भी पूज्य ही कह देते हैं, गो वे इतना जानते हैं कि जन्मकर्म के इन बाहरी 'भेखों'' के भुलावे में केवल मूर्ख लोग ही आ सकते हैं।

भक्तों की चर्चा तो गोस्वामीजी ने जी खोलकर की ही है। उन्होंने (१) भक्तों की महिमा, (२) उनके लक्षण, (३) उनकी नम्रता और प्रतीति, (४) उनकी अनन्यता, (५) उनकी आसक्ति, (६) उनके त्याग, (७) उनके जगद्बन्धुत्व और (८) उनकी शक्ति के विषय में जो कुछ कहा है वह इस ग्रंथ में देख लिया जावे। भक्तों के इन्हीं गुणों के कारण उनकी सेवा परम अभीष्टदायिनी है। यों तो रामचरितमानस के सभी प्रधान पात्र (चाहे वे देव हों, चाहे मनुष्य, चाहे राक्षस) राम के भक्त बताये गये हैं और सभी ने अपनी भावनाएँ अच्छे ढंग से प्रकट की हैं, परन्तु सेव्य-सेवकभाववाली सच्ची भक्ति के लिये निम्न-लिखित भावनाएँ तो विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

(१) भक्त के मन में निर्गुण की अपेक्षा सगुण की ओर विशेष रति रहती है।

(२) आराध्य को सुखी देखना ही भक्त की एकमात्र इच्छा रहती है।

(३) जो वस्तु आराध्य के काम आई, वह धन्य है और जो आराध्य के काम न आई, वह व्यर्थ है।

(४) आराध्य के दर्शन पाकर ही भक्त कृतार्थ हो जाते हैं। सान्निध्य बना रहा तब तो कहना ही क्या और यदि वह दर्शनप्रद सान्निध्य अन्तकाल के समय भी बना रहे तब तो फिर उस आनन्द की बात ही न पूछिये।

(५) यदि आराध्य के चरणकमल, वरद हस्त, प्रेमपूर्ण भाव आदि मिल गये तब तो फिर कृतकृत्यता ही हो गई समझिये।

(६) भक्त लोग भेद-भक्ति के कारण अविनाशी जीव बने रहना पसन्द करते हैं।

(७) वे भक्ति के आनन्द के लिये ही भक्ति करते हैं। यदि वे भवभीरभंजन कराना चाहते हैं तो केवल इसी लिये कि अविद्या के विनाश के अनन्तर उन्हें भक्ति का निर्बाध आनन्द मिलेगा। सन्तों से अथवा परमात्मा से वे इसके अतिरिक्त और कोई याचना ही नहीं करते।

आराध्य और आराधक के स्वरूप और सम्बन्ध का बहुत कुछ स्पष्टीकरण गोस्वामीजी की लिखी हुई स्तुतियों में हो जाता है। भावुक भक्तों के पाठ के लिये भी वे बड़ी अच्छी वस्तुएँ हैं। ऐसी स्तुतियाँ रामचरितमानस में अनेक हैं। देवगणकृत स्तुतियों में ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, जयन्त, देव और वेद द्वारा की गई स्तुतियाँ हैं। मुनिगणकृत स्तुतियों में परशुराम, अत्रि, सुतीक्ष्ण, सनकादि तथा नारद की वन्दनाएँ हैं। अन्य जीवकृत स्तुतियों में कौशल्या, अहल्या, मन्दोदरी, जटायु और भुशुंडि की उक्तियाँ हैं। फिर स्वतः गोस्वामी-जी कृत मङ्गलाचरण की रचनाएँ भी सुन्दर स्तुतियों के रूप में विराजमान हैं।

आराधनाखण्ड में भक्ति का व्यापक तत्त्व है। गोस्वामीजी का हरिभक्तिपथ समन्वय मार्ग ही है, क्योंकि वह "संयुत विरतिविवेक" है।

वे अपना कोई अलग पंथ चलाना नहीं चाहते थे, परन्तु वे समन्वय मार्ग का रहस्य अवश्य भली भाँति प्रकट कर देना चाहते थे। इसी लिये एकांगी नये पंथ-प्रवर्तकों को उन्होंने ख़ूब फटकार बताई है। [गोस्वामीजी द्वारा प्रतिपादित विरति में कर्म-सिद्धान्त और विवेक में ज्ञानसिद्धान्त का पूरा समावेश है। इसलिये गोस्वामीजी के 'संयुत विरतिविवेक' हरिभक्ति-पथ में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों पथों की बातें हैं।]

विरति का—कर्मसिद्धान्त का—विषय नियति-चक्र से प्रारंभ होता है। गोस्वामीजी कहते हैं कि नियति-चक्र (जिसे विधि-विधान, कर्मविपाक, भाग्य अथवा ईश की आज्ञा भी कहा जाता है) बड़ा प्रबल है। इसलिये सकाम कर्मों में यदि असफलता मिली तो दुःखित होना हमारी ही मूर्खता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भाग्याधीन होकर सब कर्मों का ही बहिष्कार कर दिया जाय। असल बहिष्कार तो कर्मों का नहीं, वरन् कर्म-कामना का होना चाहिए। इस कामना से प्रेरित होनेवाले शुभाशुभदायक कर्म (सकाम कर्म) अवश्य त्यागने योग्य हैं, क्योंकि इन्हीं के कारण सुख-दुःख का चक्कर मिलता है। ये कर्म स्वरूपज्ञान होने पर आप ही आप छूट जाते हैं। [व्यवहार में नियति-परतंत्र रहते हुए भी स्वरूपज्ञान के लिये मनुष्य पूर्ण स्वतंत्र है] इसलिये जो स्वरूपज्ञान द्वारा कल्याण-साधन नहीं करता वह आत्महन्ता है। वह नियति-चक्र को व्यर्थ ही दोष देता रहता है। भक्ति के विना कल्याण-साधन पूर्ण नहीं होता, क्योंकि भक्ति ही से भगवत्-प्रकाश स्पष्ट होता है अथवा यों कहिये कि स्वरूपज्ञान होता है, जिसके कारण माया का बन्धन (नियति-चक्र) अक्लेशकर बन जाता है। [इस प्रकार भक्ति के विना विरति का मार्ग—कर्मसिद्धान्त का मार्ग—अधूरा रह जाता है।]

विरति के सिद्धान्त का इस तरह विवेचन करते हुए गोस्वामीजी उसके साधनों (विविध नीतियों) की भी चर्चा करते हैं। विरति का

आधार है धर्म और धर्मतत्त्व समझने के लिये नीतियाँ जानना ज़रूरी है। इसलिये उन्होंने (१) सामान्य नीति, (२) गार्हस्थ्य नीति, (३) राजनीति और (४) धर्मनीति पर ख़ूब कहा है और ख़ूब सुन्दर कहा है। सामान्य नीति में (अ) पुरुष की परख, (आ) महापुरुष की पहिचान, (इ) हीनजन के लक्षण, (ई) वैर-प्रीति के रहस्य, (उ) अवसर की बात और (ऊ) कुछ अन्य सामान्य नियम बताये गये हैं। गार्हस्थ्य नीति में गोस्वामीजी ने माता-पिता की आज्ञा का पालन करने पर बड़ा ज़ोर दिया है। परन्तु उसकी भी उन्होंने एक मर्यादा खींच दी है। वे कहते हैं कि पूज्य पितर लोग प्राणों के समान हैं; परन्तु राम तो प्राणों के भी प्राण हैं। इसलिये पितरों की आज्ञा वहीं तक मान्य है जहाँ तक वह रामभक्ति में सहायक हो। इस गार्हस्थ्य नीति में उन्होंने बंधु का महत्त्व बताया है, बालकों पर दया करने का संकेत किया है, सुपुत्र और कुपुत्र की चर्चा की है। सद्-गृहस्थ और विपन्न गृहस्थ की बातें कही हैं, जाति-अपमान की दारुणता का उल्लेख किया है और नारी के धर्म पर बहुत कुछ कहा है। गोस्वामीजी ने पूर्व परम्परानुसार नारी को काम का उपकरण बताया है और उसके स्वभाव के श्यामपक्ष को बहुत ज़ोरदार शब्दों में चित्रित किया है। [ठीक उसी तरह जैसा कि "विपर्यों" समझे जानेवाले इन्द्रादिक वैदिक देवों के श्यामपक्ष को।] गोस्वामीजी ने नारी की स्वतंत्रता को पसंद नहीं किया है। परंतु उनका कवि-हृदय उसकी पराधीनता के कारण दुःखित भी हो उठता है। वे सच्ची सती की प्रशंसा ही करते हैं और नारी-सम्मान की रक्षा के लिये तो यहाँ तक घोषणा कर देते हैं कि "इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥"

गोस्वामीजी-कथित राजनीति का एक-एक शब्द महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं कि राजमद बहुत प्रबल हुआ करता है। निर्वाचन-परम्परा की—"जौ पंचहिं मत लागहि नीका" की—इसी लिये अपनी ख़ास

उपयोगिता है। राजा कैसा हो और शासन का आदर्श कैसा हो ? इस सम्बन्ध में तो गोस्वामीजी ने अनेकानेक सुन्दर पंक्तियाँ कही हैं। साथ ही राजपुरुष कैसे हों, नीति और सन्मंत्र की क्या महत्ता है और दमन-व्यवस्था कैसी हो, इस सम्बन्ध में भी गोस्वामीजी ने अपने विचार प्रकट किये हैं। जो हाल उनकी राजनीति का है, वही वरन् उससे कुछ बढ़कर ही उनकी धर्म-नीति का है। इस नीति की चर्चा भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। [वास्तव में तो हिंदू-समाज को धार्मिकता पर दृढ़ कर देना ही गोस्वामीजी का प्रधान उद्देश्य था, इसलिये रामचरितमानस में धर्म-नीति का इस प्रकार विशद और सुन्दर होना स्वाभाविक ही था।] गोस्वामीजी ने धर्मनीति के अधिकारियों की बात कही है। धर्म के महँगेपन का उल्लेख किया है, धर्मशील की सुख-सम्पत्ति की चर्चा की है और युगधर्म का विशद विवेचन किया है। वे कलि के अधर्मों की विस्तृत व्याख्या करते हैं। उनका धर्मरथ परम रमणीय बन पड़ा है। वह जितना गंभीर है उतना ही उपयोगी भी है। धर्म के अन्य अनेक अङ्गों पर भी उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध में उनकी सूक्तियाँ इस प्रकार श्रेणीबद्ध की गई हैं:—(१) तप यज्ञ दान (२) जप और अर्चा (३) सत्य और अहिंसा (४) श्रद्धा और विश्वास (५) सन्तोष और शील (६) सेवाधर्म (७) परहितव्रत और (८) सत्संग। वे अधार्मिक को अत्यन्त शोचनीय मानते हैं। साथ ही धर्माचरण के लिये व्यक्तिस्वातंत्र्य को वे पूरा महत्त्व देते हैं। [हर किसी को अधिकार है कि वह अपने विवेक की कसौटी पर कसकर अपनी रुचि के अनुकूल धर्माचरण करे परन्तु हाँ इतना अवश्य है कि मनुष्य होकर वह मानवधर्म से विमुख न हो। अन्यथा वह एकदम शोचनीय हो जायगा।]

विवेक के—ज्ञानसिद्धान्त के—अन्तर्गत (१) ब्रह्म (२) जीव (३) माया (४) मोक्ष और (५) ज्ञान की पहिचान और उसकी

उपयोगिता के विषय हैं। गोस्वामीजी का कहना है कि निर्गुणब्रह्म मायाच्छन्न होने के कारण उसका शीघ्र साक्षात्कार नहीं होता। जब निर्गुणब्रह्म सगुण हो जाता है तब उसका सौंदर्य निखर उठता है। उनके मत में ब्रह्म ही मायाप्रेरक शिव है। जीव क्या है, इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने बहुत विचारपूर्ण परिभाषाएँ दी हैं। वह शरीर से भिन्न एक अविनाशी सत्ता है। उसकी मलिनता का कारण है माया। यह माया क्या है, इस पर भी गोस्वामीजी ने बहुत कुछ कहा है। माया में न केवल विवर्तरचना सामर्थ्य (विद्या) है वरन् वह विवर्त में सत्प्रतीतिस्थापन सामर्थ्य (अविद्या) भी रखती है। राम की माया प्रबल होगी ही क्योंकि वह ब्रह्म की माया है। परन्तु ब्रह्मांश होने के कारण सुर और असुर भी माया की शक्ति रखते हैं। माया की वास्तविकता कुछ भी नहीं है परन्तु यह कह देना जितना आसान है, जान लेना उतना ही कठिन है। माया की विशेष प्रबलता उसके त्रिशूल—काम, क्रोध और लोभ—के कारण है। यह माया के प्रहार का ही परिणाम है कि जिससे लोग पाप-तापदग्ध होकर आवागमन का चक्कर लगाया करते हैं। यह प्रहार होता ही क्यों है ? इसके उत्तर में गोस्वामीजी कहते हैं (१) अपने अज्ञान से, अथवा (२) प्रभु की इच्छा से। प्रभु की इच्छा ही क्यों होती है, इसे समझाने के लिये गोस्वामीजी ने एक सुन्दर दृष्टान्त दे दिया है। इस माया को छिन्न-भिन्न करने का सबसे अमोघ अस्त्र है हरिकृपा, जो भक्ति से प्राप्त होती है। मोक्ष क्या है, और क्यों अभीष्ट है इसका रहस्य बताते हुए गोस्वामीजी ने ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया है। ज्ञान के साधन के लिये उन्होंने (१) योग (२) सत्संग (३) गुरु और (४) वैराग्य का उल्लेख किया है। योगबल की बड़ी महिमा है परन्तु भक्तिहीन योग को कुयोग ही समझना चाहिये। यद्यपि यह ठीक है कि ऐसे भक्तिहीन योग—प्रधान ज्ञानमार्ग द्वारा भी "घुणाक्षरन्याय" से कैवल्य मुक्ति मिल जाती है परन्तु यह मार्ग इतना जटिल है कि

बिरले ही लोग इसके द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय को समझाने के लिये गोस्वामीजी ने विज्ञान-दीपक का बड़ा सुन्दर रूपक बांधा है। परन्तु जो सच्चा ज्ञानमार्ग है—[भक्तिसंयुक्त ज्ञानमार्ग है]—उसमें और भक्तिमार्ग में तो कोई अन्तर ही नहीं है। अब अन्तिम विषय रह गया ज्ञान की परख और ज्ञान का फल। सो गोस्वामीजी ने सद्ज्ञान की पहिचान, उसकी उपयोगिता और उसकी महत्ता पर अनेक पंक्तियाँ लिखी हैं। उन्होंने ज्ञानी का महत्त्व भी परमात्मा की बराबरी का बताया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि ज्ञान की ऐसी सिद्धि का श्रेय भी उन्होंने हरिकृपा को दिया है न कि योगसाधन को। [गोस्वामीजी को अद्वैतवादी अथवा विशिष्टाद्वैतवादी मानना अपनी-अपनी रुचि की बात है। वास्तव में तो उनके तत्त्वसिद्धान्त में इन दोनों वादों का समन्वय है।]

हरिभक्ति-पथ का—भक्तिसिद्धान्त का—विषय ही तो गोस्वामीजी का मुख्य विषय है। यह विषय तीन भागों में विभक्त किया गया है—पहिला भाग है "भक्ति की रूपरेखा", दूसरा है "भक्ति के साधन" और तीसरा है "भक्ति की श्रेष्ठता"। भक्ति की रूपरेखा में पहिली बात है भक्ति की परिभाषा। दूसरी बात है भक्ति से जो लाभ होते हैं उनकी चर्चा। तीसरी बात है यह तत्त्व कि भक्ति (भगवत्प्राप्ति) ही से जीवन की सार्थकता है, वही परम सिद्धान्त है और वही परम प्राप्य है। चौथी बात है यह कथन कि भक्ति अत्यन्त सुगम होकर भी परम दुष्प्राप्य है। गोस्वामीजी ने ऐसी दुष्प्राप्य भक्ति को भी सुगम बनाने का जो सरल नुस्खा दिया है वह है विश्वास मानकर राम-चरितमानस का निरन्तर श्रवण।

भक्ति के साधनों में (१) सप्तसोपान (२) नवधा भक्ति (३) चतुर्दश भाव (४) उपयुक्त तन-मन-वचन (५) ज्ञान-वैराग्य और(६)सत्संग की चर्चा है। सत्संग के अन्तर्गत कुसंग (जिसे छोड़ना है), सुसंग (जो संग्राह्य है) और तीर्थों की (जो सत्संग के साधन हैं) पर्याप्त

चर्चा है। गोस्वामीजी ने तीर्थों की बहुत महिमा गाई है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि किसी को तीर्थयात्रा मात्र से निष्पापात्मा होने का पट्टा मिल जायगा। [भक्तिसाधनों की यह समूची चर्चा बहुत ध्यान से पढ़ने और मनन करने योग्य है। इन सब साधनों में कुछ तो गौण हैं और कुछ प्रधान अथवा अनिवार्य। अनिवार्य साधन इस प्रकार हैं:—(१) मानव-शरीर (२) श्रद्धा (३) विश्वास (४) निश्छलता (५) लोकसेवा (६) विवेक (७) वैराग्य (८) प्रभु-प्रेम, (९) नामजप और (१०) सत्संग। पहिला साधन तो ईश्वरीय देन है और वह एक जन्म में एक ही बार प्राप्त होता है। शेष नव साधन ही सच्ची नवधा भक्ति अथवा भक्ति के सच्चे नव साधन कहाने योग्य हैं। हृदय से (मनसा) प्रभुप्रेम, मुख से (वाचा) नामजप और क्रिया से (कर्मणा) सत्संग, यही गोस्वामीजी को अभीष्ट है। शेष साधनों में श्रद्धा और विश्वास नाम-जप के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध हो जाते हैं, निश्छलता और लोक-सेवा का प्रभुप्रेम में अन्तर्भाव हो जाता है और विवेक, वैराग्य सत्संग के उपांग से बन जाते हैं। इन छः साधनों के विना ये तीन साधन पूरा फल नहीं दे सकते। इन नवों साधनों का परस्पर कुछ ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये सबके सब मनोवैज्ञानिक सत्य पर कुछ इस प्रकार जमे हुए हैं कि गोस्वामीजी की इस नई नवधा भक्ति पर जितना ध्यान दिया जाय उतना ही मन चमत्कृत होता जाता है।]

भक्ति की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में अनेकानेक युक्तियाँ देकर गोस्वामीजी यह बताते हैं कि वह ज्ञान से भी श्रेष्ठ है। परन्तु यह न भूलना चाहिये कि भक्तियुक्त ज्ञान को गोस्वामीजी ने पूरा मान दिया है। गोस्वामीजी के मन में भक्ति ज्ञान की तरह मुक्ति का केवल सामान्य आधार ही नहीं वरन् प्रधान आधार है और प्रधान आधार होकर भी वह मुक्ति से श्रेष्ठ है। इनकी दृष्टि में भक्ति ही सब साधनों का फल है। उसके विना सब साधन शून्य हैं। इसलिये भगवद्-विमुख

लोग नितान्त शोचनीय हैं और भगवद्भक्त ही धन्य हैं। इसी लिये उन्होंने स्थल-स्थल पर "भक्ति करो, भक्ति करो" इस प्रकार का स्पष्ट आदेश दिया और दिलाया है।

"मानस-मंथन" में जो कुछ है उसका दिग्दर्शन ऊपर हो चुका। बड़े कोष्ठक में जो वाक्य रक्खे गये हैं वे भले ही मेरे समझे जायँ परन्तु शेष जितने वाक्य हैं उन सबका प्रधान आधार इसी "मन्थन" में है। मैंने विना किसी विशेष टीका-टिप्पणी के गोस्वामीजी की पंक्तियाँ पाठकों के सन्मुख रख दी हैं ताकि वे स्वतः मधुकर बनकर उनसे उपयुक्त रस निकाल लें। उन्हें यदि मेरी विवेचना पढ़ना अभीष्ट हो तो वह तुलसी-दर्शन में मिल सकती है। अपने नक्शे का ढाँचा तो मैंने इस प्राक्कथन में रख ही दिया है और मुझे विश्वास है कि यह ढाँचा ही जिज्ञासुओं की बहुत दूर तक इच्छापूर्ति कर देगा।

"मानस-मन्थन" में तुलसी-मतरूपी नवनीत जिस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है उसकी अपनी ख़ास विशेषताएँ हैं। यद्यपि वह "श्रुति-सम्मत" होने के कारण कोई नया पंथ नहीं और उसमें ऐसी कोई बात नहीं जो प्राचीन आचार्यों द्वारा न कही गई हो तथापि उसमें गोस्वामीजी के संकलन-कौशल का इतना चमत्कार है कि वह चिर-प्राचीन होकर भी नित्य नवीन है। मुझे उसकी महत्ता के तीन प्रधान कारण जान पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) उसमें बुद्धिवाद और हृदयवाद का सुन्दर सामञ्जस्य है।

तर्क और श्रद्धा का एक दूसरे से विरोध है परन्तु गोस्वामीजी ने उन दोनों का समन्वय करके दिखा दिया है। उन्होंने सत्तर्क का बहिष्कार नहीं किया है। उनके बुद्धिवाद की विशेषता यह है कि उन्होंने अद्वैतवाद को भली भाँति अपना लिया है। उन्होंने विवेक के सहारे पाप के मूल कारण का अच्छा विवेचन किया है और रोग का निदान करके उपयुक्त औषध भी बता दी है। उनका हृदयवाद

भी इसी प्रकार का है। अभिलषित विषय की ओर लगन, उस लगन की बाधक परिस्थितियों में भी अविचलता और प्रतिकूल विषयों के परित्याग के लिये पर्याप्त मनोबल—यही हृदयवाद की विशेषताएँ हैं। हृदयवाद की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है जीव के 'सहज स्नेह' की चरितार्थता जिसके भीतर लोककल्याण की भावना पूर्ण रूप से समाविष्ट है। गोस्वामीजी के हृदयवाद में ये ही सब बातें हैं। इन दोनों वादों का समन्वय करके वे विरक्ति और आसक्ति को एक में मिलाकर दिखा देते हैं। यह उन्हीं की खूबी है कि उन्होंने जहाँ एक ओर सर्वोत्कृष्ट हृदयवाद को विवेक के सुदृढ़ आसन पर संस्थापित कर रक्खा है वहाँ, दूसरी ओर, चरम सीमा तक पहुँचे हुए बुद्धिवाद को वे वैराग्य की अचल अटल नींव से हिलने नहीं देते। तुलसीमत में ज्ञान और भक्ति के विरोध की कहीं गुञ्जाइश ही नहीं।

(२) वह सनातन हिन्दू-धर्म का विशुद्ध रूप है।

प्रत्येक धर्म में तद्देशीय संस्कृति और मानवधर्म दोनों का मेल रहा करता है। उस धर्म के संस्थापक आचार्य अथवा आचार्यों की विचारसीमा के अनुसार भी उसका रूप निर्दिष्ट होता रहता है। सनातनधर्म का कोई एक आचार्य नहीं। अनेकानेक आचार्यों ने इस धर्म में अपने विचारों का अनेकानेक प्रकार से योग दिया है। इस-लिये इसमें जहाँ ऊँची से ऊँची भारतीय संस्कृति के दर्शन हो सकते हैं वहाँ ऊँचे से ऊँचा मानवधर्म भी स्पष्ट होता रहता है। रागद्वेष से हीन होकर विराट् पुरुष की—अखिल जगत् की—सेवा का जो भाव सनातनधर्म में ओत-प्रोत है वह और कहाँ है? बाह्याचार की बातें—मठ मंदिर मूर्ति जाति आदि की बातें—चाहे बदलती रहें परन्तु मानव-धर्म के सिद्धान्त तो बदले नहीं जा सकते। गोस्वामीजी ने इसी लिये अपने मत में मानवधर्म की तो ऊँची से ऊँची बातें ले ली हैं और बाह्याचार की बातों को इस खूबी से अलग कर दिया है (जैसे मूर्तिपूजा को उन्होंने कह दिया कि यह तो द्वापर का धर्म है कलि-

युग का नहीं) कि उनके सम्बन्ध में खण्डन-मण्डन का बवण्डर ही न उठने पाया। उन्होंने विशुद्ध भारतीय संस्कृति की अवश्य रक्षा की है परन्तु उसके ऐसे किसी रूप पर उन्होंने ज़ोर नहीं दिया जो आर्य नैतिक भावनाओं के किसी भी प्रकार प्रतिकूल हो। इतना ही नहीं उन्होंने तो भारत की अनेकानेक संस्कृतियों के समन्वय की भरपूर चेष्टा भी की है। उन्होंने शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, वेदपाठी ब्राह्मणों, वेद की उपेक्षा करनेवाले "सन्तों" और "वैरागियों" आदि-आदि सभी को एक में मिला दिया है। तुलसीमत में गीता से लेकर गांधीवाद तक की समग्र विभूतियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का अनासक्तियोग, बौद्धों और जैनों का अहिंसावाद, वैष्णवों और शैवों का अनुराग वैराग्य, शाक्तों का जप, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुज की भक्तिभावना, निम्बार्क का द्वैताद्वैतभाव, मध्व की रामोपासना, वल्लभ का बालरूप आराध्य, चैतन्य का प्रेम, गोरख आदि योगियों का संयम, कबीर आदि सन्तों का नाममाहात्म्य, रामकृष्ण परमहंस का समन्वयवाद, ब्रह्मसमाज की ब्रह्मकृपा, आर्यसमाज का आर्यसंगठन और गांधीजी की सत्य-अहिंसामूलक आस्तिकता-पूर्ण लोकसेवा आदि-आदि सभी तत्त्व तो तुलसीमत में हैं ही। साथ ही मुसलमानों का मानव-बन्धुत्व और ईसाइयों का श्रद्धा तथा कारुण्य से पूर्ण सदाचार भी उसमें अपनी छटा दिखा रहे हैं।

(३) वह नक़द धर्म है।

जो धर्म परलोक का प्रलोभन देकर मनुष्यों को सदाचार की ओर प्रवृत्त करावें वे सब उधार धर्म हैं। अज्ञात स्वर्ग की आशा में इस लोक के कर्तव्यों को भुला बैठना बुद्धिमानी नहीं है। गोस्वामीजी ने इसी लिये स्वर्ग के लालच को कभी प्राधान्य नहीं दिया। उनका धर्म एकदम नक़द धर्म है; क्योंकि वह न केवल सदाचारमूलक है वरन् उसमें साधुमत और लोकमत का सुन्दर सम्मेलन भी है। उसका प्रचार ही लोकहित की दृष्टि से किया गया है। अपने आचार में परिस्थिति

के अनुसार किस प्रकार परिवर्तन कर लेना चाहिये, इधर-उधर के लोकों की बातें छोड़कर अपने ही पास "सचराचर" रूप से किस प्रकार भगवान् को देख लेना चाहिये, भक्ति के आनन्द के ही लिये किस प्रकार "सब तज हरि भज" वाला सिद्धान्त ग्रहण करना चाहिये, लोकमत की चरितार्थता और पारस्परिक संगठन के लिये किस प्रकार सत्संग-सरीखे सुन्दर उपायों का अवलम्ब लेना चाहिये तथा संसारसेवा को ही विभुसेवा का प्रधान रूप मानकर किस प्रकार व्यवहार और परमार्थ को एक कर लेना चाहिये आदि-आदि बातों की चर्चा करके गोस्वामीजी ने अपने मत को स्पष्ट ही नक़द धर्म बना दिया है।

इस प्रकार का तुलसीमत परम रमणीय काव्य-कौशल के सहारे रामचरित-मानस में अवतीर्ण होकर गोस्वामीजी को तो अमर बना ही रहा है साथ ही वह करोड़ों मनुष्यों के कल्याण-साधन में भी आज रामवत् कार्य कर रहा है। उसने न जाने कितने डूबते हुए मनुष्यों का उद्धार किया है, न जाने कितने अँधेरे घरों में उजाला पहुँचाया है, न जाने कितने भूले-भटकों को सन्मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। कहीं रामलीलाएँ होती हैं, कहीं रामायण के पारायण होते हैं, कहीं मानस पर प्रवचनों के प्रबन्ध होते रहते हैं। कहीं इसके अंश पाठशालाओं की पाठ्य सामग्रियों में प्रविष्ट हुआ करते हैं, कहीं साधू-सन्तों की जमात में इसकी चर्चा होती है, कहीं विद्वन्मण्डली में इस पर ऊहापोह होता है और कहीं यह ग्रन्थ एकान्तवासियों का एकान्त सङ्गी होकर रहता है। कोई कथाप्रवाह के आनन्द के लिये रामचरित-मानस को पढ़ते हैं, कोई काव्य का पीयूषरस पाने के लिये। कोई भाषा के लिये उसकी ओर झुकते हैं तो कोई संगीत की गुनगुनाहट के लिये। मतलब यह कि अनेक मार्गों और अनेक भावों से रामचरित-मानस मानव-समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है और जहाँ-जहाँ मनुष्यों से इस ग्रन्थरत्न का सम्पर्क हुआ है वहाँ-

वहाँ तुलसीमत अपना चमत्कार दिखाए बिना नहीं रहा है। भाई-भाई का व्यवहार कैसा हो, पिता-पुत्र का व्यवहार कैसा हो, पति-पत्नी का व्यवहार कैसा हो, राजा-प्रजा का व्यवहार कैसा हो, आर्य-अनार्य का व्यवहार कैसा हो आदि-आदि बातें न केवल कहकर ही बताई गई हैं वरन् उज्ज्वल चरित्रों के दृष्टान्त देकर भी समझा दी गई हैं।

गोस्वामीजी ने जान-बूझकर रामचरित-मानस की आड़ में भक्ति-शास्त्र का प्रणयन किया था अथवा यह उनके "मानस" से आप ही आप उद्भूत हो गया, यह तो गोस्वामीजी ही जानें। इतना तो निश्चित है कि यह साङ्गोपाङ्ग तुलसीमत—साङ्गोपाङ्ग भक्तिशास्त्र—रामचरित-मानस का ही अङ्ग है—उसी से चुनकर बाहर निकाला गया है। इसलिये यह सर्वथा उपादेय ही वस्तु है, किसी प्रकार हेय नहीं।

इस ग्रन्थ के छन्दों के आगे जो अंक दिये गये हैं वे बाबू रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित तथा हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी द्वारा प्रकाशित उसी रामचरित-मानस की पृष्ठ और पंक्तिसंख्याएँ हैं जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। कहीं-कहीं छापे की भूलें रह गई हैं परन्तु वे विशेष नहीं हैं। इसकी हस्तलिपि तैयार करने में मुझे अपने कनिष्ठ भ्राता ज्वालाप्रसाद मिश्र और पं० रामचरण अग्निहोत्री से विशेष सहायता मिली है।

आशा है, जिज्ञासुओं को और उन भावुक भक्तों को जो विषयानुक्रम से रामचरित-मानस के सिद्धान्त-वाक्योंवाली पंक्तियों का ही पारायण करना चाहते हैं—यह ग्रन्थ पसन्द आवेगा। मैं तो यह भी आशा करता हूँ कि टेक्स्टबुक-कमेटियों का भी ध्यान इस उपयोगी ग्रन्थ की ओर आकृष्ट होगा और यदि इसके कुछ अंश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, हाई स्कूल और कालेज आदि की परीक्षाओं में सम्मिलित कर लिये गये तो वे परीक्षार्थियों के लिये लाभप्रद ही सिद्ध होंगे।

बलदेवप्रसाद मिश्र

मानस-मंथन

गोस्वामीजी का रामचरितमानस भक्तिशास्त्र
का एक अपूर्व ग्रन्थ बन पड़ा है,
कारण निम्नलिखित हैं ।

पूर्वार्द्ध
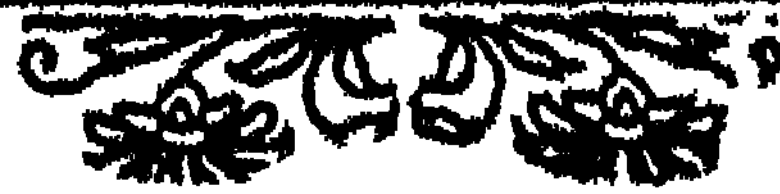
(विषय-विवेचन)

गोस्वामीजी अपने अति मंजुल भाषानिबन्ध को काव्यकसौटी पर कसते और उसे खरा प्रासादिक काव्य पाते हैं।

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥ ३—१, २

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं।
सो स्रम बादि बालकबि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥ ११-१६, १७

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान॥ ११-२१, २२

भनिति मोरि सिवकृपा बिभाती।
ससिसमाज मिलि मनहुँ सुराती॥ १२-१३
संभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी॥ २२-१३

अस मानस मानस चप चाही ।
भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ॥
भयउ हृदय आनंद उछाहू ।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥
चली सुभग कबिता सरिता-सी ।
राम-बिमल-जस-जल-भरिता-सी ॥ २४-२०से २२

परन्तु उसकी असली महत्ता काव्य-चमत्कार के कारण नहीं, किन्तु रामकथा के कारण है ।

भनिति मोरि सब गुनरहित बिस्वबिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्हके बिमल बिबेक ॥ ८-२४, २५

एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।
अति पावन पुरान स्रुतिसारा ॥
मंगलभवन अमंगलहारी ।
उमासहित जेहि जपत पुरारी ॥
भनिति बिचित्र सुकबिकृत जोऊ ।
रामनाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी ।
सोह न बसन बिना बर नारी ॥
सब गुनरहित कुकबिकृत बानी ।
रामनाम जस अंकित जानी ॥ ६-१ से ५
जदपि कबित रस एकउ नाहीं ।
रामप्रताप प्रगट एहि माहीं ॥ ६-७

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी ।
रामकथा जग - मंगलकरनी ॥ १-१०

प्रभु सुजससंगति भनिति भलि होइहि सुजनमनभावनी ।
भवअंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी ॥

प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति रामजससंग ।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग ॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिराग्राम सियरामजस गावहिं सुनहिं सुजान ॥ १-१३ से १८

भगति हेतु बिधिभवन बिहाई ।
सुमिरत सारद आवति धाई ॥
रामचरितसर बिनु अन्हवाये ।
सो स्रम जाइ न कोटि उपाये ॥
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी ।
गावहिं हरिजस कलिमलहारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीपि समाना ।
स्वाती सारद कहहिं सुजाना ॥
जौं बरखइ बर बारि बिचारू ।
होहिं कबित मुकुता मनि चारू ॥

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग । } १-२२ से २४
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग ॥ } १०-१ से ५

यह रामकथा लोककल्याण (सबकर हित) के दृष्टिकोण से लिखी गई है।

तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी ।
कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥ ५७-१६
तदपि असंका कीन्हिहु सोई ।
कहत सुनत सबकर हित होई ॥ ५७-२३

इसीलिए इसमें—

(१) श्रुतिसिद्धान्त का निचोड़ रखा गया है।

बरनहुँ रघुबर बिसद जस स्रुतिसिद्धांत निचोरि ॥ ५६-१८

(२) दार्शनिक प्रश्नावलियाँ गुम्फित की गई हैं।

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोहीं ।
कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोहीं ॥ २७-१८
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥ ५६-२२
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी ।
जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा ।
पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥
अउरउ रामरहस्य अनेका ।
कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई ।
सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥ ५७-३ से ६

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा ।
सब तजि करउँ चरनरज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया ।
कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

ईस्वर-जीव-भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ ।
जातें होइ चरनरति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ ३०७-१८ से २१

ग्यानहिं भगतिहिं अंतरु केता ।
सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥ ४९९-१२

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ ।
जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ॥
नाथ मोहिं निज सेवक जानी ।
सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ॥
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा ।
सबतें दुरलभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी ।
सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी ॥
संत असंत मरम तुम्ह जानहु ।
तिन्हकर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य स्रुतिबिदित बिसाला ।
कहहु कवन अघ परम कृपाला ॥
मानस रोग कहहु समुझाई ।
तुम्ह सरबग्य कृपा अधिकाई ॥ ५०३-११ से १७

तथा (२) व्याससमास-पद्धति के अनुसार यथामति अनूप बातें कही गई हैं, जिनसे मन को प्रबोध हो, वाणी पवित्र हो, त्रास और दुःख दूर हों तथा अन्तस्तम की शान्ति हो।

कबि न होउँ नहि चतुर कहावउँ ।
मति अनुरूप रामगुन गावउँ ॥ १०-१४

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥
स्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समुझउँ मैं जीव जड़ कलिमलग्रसित बिमूढ़ ॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबंध करबि मैं सोई ।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥
जस कछु बुधिबिबेक बल मेरे । ⎫ १.६-१८ से २२
तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे ॥ ⎭ २०-१, २
सो सब हेतु कहब मैं गाई ।
कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥ २ -११

कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा-संभु-संबाद ।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनि मुनि मिटिहि बिषाद ॥ २८-६,७

निज गिरा पावनि करन कारन रामजस तुलसी कहेउ ।
रघुबीरचरित अपार बारिधि पार कबि कौने लहेउ ॥ १६६-२४,२५
यह चरित कलिमलहर जथामति दास तुलसी गाएऊ ॥ ३७०-१२

खगपति रामकथा मैं बरनी ।
स्वमति बिलास त्रास दुखहरनी ॥ ४२०-२६

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा ।
मैं सब कही मोरि मति जथा ॥ ४६६-३

सुनु खगेस रघुपति - प्रभुताई ।
कहउँ जथामति कथा सुहाई ॥ ४७६-१

कहेउँ नाथ हरिचरित अनूपा ।
ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥ ५०६-१

नाथ जथामति भाखेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ । ५०६-११

मति अनुरूप कथा मैं भाखी ।
जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥ ५०८-१

रघुपतिकृपा जथामति गावा ।
मैं यह पावन चरित सुहावा ॥ ५०९-६

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ ५१०-७,८

रामकथा को जगत्‌हितकर रूप प्रदान करने में अपूर्वता आ जाना स्वाभाविक था। इस अपूर्वता के कारण सामान्य भक्तों की श्रद्धा में बाधा न आवे, इसीलिए वे कहते हैं—

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई ।
जनि आचरज करइ सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी ।
नहिं आचरज करहिं अस जानी ॥

रामकथा कै मिति जग नाहीं ।
असि प्रतीति तिन्हके मनमाहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा ।
रामायन सतकोटि अपारा ॥
कलपभेद हरिचरित सोहाये ।
भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये ॥
करिय न संसय अस उर आनी ।
सुनिय कथा सादर रति मानी ॥

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार ।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिनके बिमल बिचार ॥ २१-१२ से १६

रामचरित अति अमित मुनीसा ।
कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा ॥ ५४-१७
रामनाम गुन चरित सुहाये ।
जनम करम अगनित स्रुति गाये ॥
जथा अनंत राम भगवाना ।
तथा कथा कीरति गुननाना ॥ ५८-११, १२

हरिगुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित । ६१-७

हरि अनंत हरि कथा अनंता ।
कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता ॥
रामचंद्र के चरित सुहाये ।
कलप कोटि लगि जाहिं न गाये ॥ ६८-२३, २४
रामचरित सतकोटि अपारा ।
स्रुति सारदा न बरनइ पारा ॥

राम अनंत अनंत गुनानी ।
जनम करम अनंत नामानी ॥
जलसीकर महिरज गनि जाहीं ।
रघुपतिचरित न बरनि सिराहीं ॥ ४६६-४ से ६

चरितसिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ ॥ ५०६-१२

रामचरितमानस न तो कोई इतिहासग्रन्थ है, न दार्शनिक ग्रन्थ। इसलिए इसे जानकारी के लिए नहीं, वरन् रस लेने के लिए पढ़ना चाहिए। इसमें इतिहास को गौण मानकर राम के ब्रह्मत्वस्थापन को प्राधान्य दिया गया है तथा इस रससरोवर के लिए रहस्यविभाग, हरिचरित्र, योग, वैराग्य, विज्ञान, ज्ञान और भक्ति ऐसे (वास्तविक) सप्तसोपानों (क्रमिक साधनों) का उल्लेख किया गया है—

रामचरित जे सुनत अघाहीं ।
रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥ ४६६-१६
सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई ।
नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महँ आदि मध्य अवसाना ।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥ ४७०-३,४
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा ।
जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा ।
मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥ ४८१-६,७

उत्तरार्द्ध

(ग्रन्थ-माहात्म्य)

यह ग्रन्थ संशयोच्छेदक है, अतएव एक शास्त्र ही है—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी।
करउँ कथा भव-सरिता-तरनी॥ २०-३

रामकथा सुंदर करतारी।
संसय बिहग उड़ावनहारी॥ ४८-६

सुखभवन संसयसमन दमन बिषाद रघुपतिगुनगना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥ ३७०-१३,१४

यह भक्ति-मुक्ति और कृतकृत्यता देनेवाला है, अतएव इसे भक्तिशास्त्र का ग्रन्थ कहना चाहिए—

मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। ६-११

जे एहि कथहिं सनेहसमेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरन-अनुरागी।
कलिमलरहित सुमंगल-भागी॥ १२-२०,२१

बुधबिस्राम सकल जनरंजनि ।
रामकथा कलिकलुषबिभंजनि ॥
रामकथा कलि-पन्नग भरनी ।
पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ॥
रामकथा कलि कामद गाई ।
सुजन सजीवनिमूरि सोहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि ।
भयभंजनि भ्रम-भेक भुअंगिनि ॥
असुरसेनसम नरक निकंदिनि ।
साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि ॥
संतसमाज पयोधि रमा-सी ।
बिस्वभार भर अचल छमा - सी ॥
जमगन मुह मसि जग जमुना - सी ।
जीवनमुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी ।
तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥
सिवप्रिय मेकलसैलसुता सी ।
सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी ।
रघुबर-भगति प्रेम परिमिति सी ॥

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन सियरघुबीर बिहारु ॥ २०-४ से १५

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा ।
सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥ २२-१

रामचरितमानस एहि नामा ।
सुनत स्रवन पाइय बिसरामा ॥
मन करि बिषय अनल बन जरई ।
होइ सुखी जौं एहि सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि भावन ।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन ।
कलिकुचालि कुलि कलुष नसावन ॥ २२-१० से १३
अद्भुत सलिल सुनत सुखकारी ।
आस पिआस मनोमलहारी ॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी ।
हरत सकल कलिकलुषगलानी ॥
भवश्रम सोषक तोषक तोषा ।
समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मद मोह नसावन ।
बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किये तें ।
मिटहिं पाप परिताप हिये तें ॥ २६-६ से १०
महामोह महिषेस बिसाला ।
रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससिकिरन समाना ।
संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥ २८-३,४
रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि ।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनइ अस जानि ॥ २८-७,८

रामकथा कलिबिटप कुठारी ।
सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥ ४८-१०

रामकथा कलिमलहरनि मंगलकरनि सुहाइ ॥ ६६-१२

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥ ६१-१८

उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं ।
बैदेहिरामप्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं ॥

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिनकहुँ सदा उछाहु मंगलायतन रामजस ॥ १६७-१ से ४

कलिमलसमन दमन दुख रामसुजसु सुखमूल ।
सादर सुनहिं जे तिन्हहिं पर रामु रहहिं अनुकूल ॥ ३०२-२०,२१

रावनारिजसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोगु ।
रामभगति दृढ़ पावहिं बिनु बिरागु जपु जोगु ॥ ३२५-२३,२४

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं ।
त्रैलोकपावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई ।
रघुबीर - पद - पाथोज - मधुकर दास तुलसी गावई ॥

भवभेषज रघुनाथजसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ॥ ३४२-४ से ६

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुनगान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भवसिंधु बिना जलयान ॥ ३७०-१५,१६

मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जे गाइहैं ।
संसारसिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं ॥ ४२६-५,६

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान ॥ ४३८-२१,२

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भवभय दावनी ॥
महाराजकर सुभ अभिषेका ।
सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं ।
सुखसंपति नाना बिधि पावहिं ॥ ४५०-२१ से २३
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई ।
लहहिं भगति गति संपति नई ॥ ४५०-२५
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी ।
मोह नदी कहँ सुंदर तरनी ॥ ४५१-१
बिमल कथा हरिपद दायनी ।
भगति होइ सुनि अनपायनी ॥ ४६६-७
* सुनहु परम पुनीत इतिहासा ।
जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा ॥
उपजइ रामचरन बिस्वासा ।
भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा ॥ ४६७-१८,१९
अब स्रीराम कथा अति पावनि ।
सदा सुखद दुखपुंज नसावनि ॥

---

* यह विचारने योग्य बात है कि गोस्वामीजी ने भुशुण्डिचरित को तो कई जगह इतिहास कहा है ; परन्तु रामचरित को इसी प्रकार इतिहास नहीं कहा ।

सादर तात सुनावहु मोही ।
बार बार बिनवउँ प्रभु तोही ॥ ४७१-११,१२

रामचरनरति जो चह अथवा पद निरबान ।
भावसहित सो यह कथा करउ स्रवनपुट पान ॥

रामकथा गिरिजा मैं बरनी ।
कलिमलसमनि मनोमल हरनी ॥
संसृतिरोग सजीवनमूरी ।
रामकथा गावहिं स्रुति सूरी ॥ ५०८-१७ से २०

मनकामना सिद्धि नर पावा ।
जो यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं ।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥ ५०८-२३,२४

यह सुभ संभु उमा संबादा ।
सुख संपादन समन बिषादा ॥
भवभंजन गंजन संदेहा ।
जनरंजन सज्जनप्रिय एहा ॥ ५०९-३,४

रघुबंसभूषनचरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥
* सतपंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरे ।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार स्रीरघुबर हरे ॥ ५०९-१५ से १८

---

* सतपंच के अर्थ में बड़ी खींचतान है। कई लोग इसका अर्थ एक सौ पाँच चौपाइयाँ मानते हैं। ऐसा अर्थ करनेवालों में एक दल वह है, जो नखशिख की चौपाइयों को ही महत्त्व देता है। उस दल की छाँटी हुई एक सौ पाँच चौपाइयाँ इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दी गई हैं।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥ २१०-११,१२

इसीलिए इसके वक्ता, श्रोता, अधिकारी, यहाँ तक कि इसके पात्र भी सब भक्त ही भक्त हैं—

वक्ता, श्रोता—

जागबलिक जो कथा सोहाई ।
भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी ।
सुनहु सकल सज्जन सुख मानी ॥
संभु कीन्ह यह चरित सोहावा ।
बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा ।
राम - भगति - अधिकारी चीन्हा ॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा ।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते स्रोता बकता समसीला ।
समदरसी जानहिं हरिलीला ॥
जानहिं तीनि काल निज ग्याना ।
करतलगत आमलक समाना ॥ १३-१० से १६
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई ।
सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥ २२-१६
भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा ।
तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा ॥

तापस सम दम दयानिधाना ।
परमारथपथ परम सुजाना ॥ २६-१७,१८

प्रथमहि मैं कहि सिवचरित बूझा मरमु तुम्हार ।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥ २४-१३,१४

जदपि जोषिता अनअधिकारी ।
दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं ।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
अति आरति पूछउँ सुरराया ।
रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥ २६-१६ से २१

नाना भाँति मनहिं समुझावा ।
प्रगट न ग्यान हृदय भ्रम छावा ॥
खेदखिन्न मन तरक बढ़ाई ।
भयेउ मोहबस तुम्हरिहि नाई ॥ ४६६-५

गयेउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।
भयेउ रामपदनेह तव प्रसाद बायसतिलक ॥
मोहि भयेउ अति मोह प्रभुबंधन रनमहुँ निरखि ।
चिदानंदसंदोह राम बिकल कारन कवन ॥

देखि चरित अति नर अनुसारी ।
भयउ हृदय मम संसय भारी ॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना ।
कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥ ४७२-११ से १६

रामकृपा तव दरसन भयेऊ ।
तव प्रसाद सब संसय गयेऊ ॥ ४७३-२२

स्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्य मत सज्जन करहिं प्रकास ॥ ४७३-२५,२६

मैं कृतकृत्य भयेउँ तव बानी ।
सुनि रघुबीर भगति रस सानी ॥
रामचरन नूतन रति भई ।
मायाजनित बिपति सब गई ॥ ५०७-१,२

मैं कृतकृत्य भयउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी रामभगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥ ५०६-१,२

अधिकारी—

हरिहरपद रति मति न कुतरकी ।
तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ॥ ८-१८

रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥ २१-८,९

जे स्रद्धासंबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ ।
तिनकहँ मानस अति अगम जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ॥ २४-१०,११

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही ।
राम सुकृपा बिलोकहिं जेही ॥
सोइ सादर सर मज्जन करई ।
महाघोर त्रय, ताप न जरई ॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ ।
जिन्ह के रामचरन भल भाऊ ॥

जो नहाइ चह एहि सर भाई ।
सो सतसंग करउ मन लाई ॥ २४-१६ से १६

रामभगति जिन्ह के उर नाहीं ।
कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं ॥ ४६८-२

यह न कहिय सठही हठसीलहि ।
जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥
कहिय न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि ।
जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥
द्विजद्रोहिहि न सुनाइय कबहूँ ।
सुरपतिसरिस होइ नृप जबहूँ ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी ।
जिन्हके सतसंगति अति प्यारी ॥
गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई ।
द्विजसेवक अधिकारी तेई ॥
ताकहुँ यह बिसेष सुखदाई ।
जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥ ५०८-११ से १६

पात्र—देवों और मनुष्यों की तो बात ही क्या है, राक्षसों के भी हाल देख लीजिए—

खरदूषन मोहि सम बलवंता ।
तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता ॥
सुररंजन भंजन महिभारा ।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥

तौ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ ।
प्रभुसर प्रान तजे भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा ।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ ।
हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥ २१३-१२,१६
सुनत बचन दससीस लजाना ।
मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥ ३१६-७

एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछुयक है कही ।
रघुबीर सरतीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहहिं सही ॥ ३४६-२६,२७

इसीलिए इस ग्रन्थरत्न को गोस्वामीजी ने राम का वास्तविक वाङ्मय तनु बनाने के लिए दैवी शक्ति से सम्पुटित किया है और इस प्रकार इसे सन्तों का सर्वस्व बताते हुए इससे विहीन मनुष्यों का जीवन दयनीय माना है—

होउ महेस मोहिं पर अनुकूला ।
करहु कथा मुद मंगलमूला ॥ १२-१७
सपनेहुँ साचहुँ मोहि पर जौ हरगौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषाभनिति प्रभाउ ॥ १३-१,२

सुमिरि सो नाम रामगुन गाथा ।
करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती ।
जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥ १८-७,८

रामचरित चिंतामनि चारू।
संतसुमति तिय सुभग सिंगारू॥ २०-१६
जिन्ह यहि बारि न मानस धोये।
ते कायर कलिकाल बिगोये॥
तृषित निरखि रबिकर भवबारी।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥ २६-११,१२

तुलसीदासजी की वाणी उसी प्रकार गूढ़ है, जिस प्रकार उस वाणी से वर्णित राम के गुण। परन्तु निरन्तर अध्ययन के सत्संग से निश्चय ही सब प्रकार के संशय दूर हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में अन्य प्रसंगों से उद्धृत निम्नलिखित वाक्य कितने ठीक बैठते हैं—

ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी।
गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥ २८३-२०

उमा रामगुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोहबिमूढ़ जे हरि बिमुख न धरमरति॥ २६६-१,२ *

तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिय सतसंगा॥ ४७०-२

असल में तो इस मानस की अवतारणा भजनप्रभाव के लिए हरिप्रेरणा से हुई है और इसीलिए अपने पौरुष के अनुसार

---

* यह सोरठा इसी ग्रन्थ में अन्यत्र भी आया है। प्रसंगवश हमने इस प्रकार कई पंक्तियाँ दो-दो स्थानों में लिखी हैं। परन्तु ऐसे अवसर कम ही आये हैं।

भक्तिरससिंधु में गोता लगाकर गोस्वामीजी ने जो भावरत्न पाये हैं, उन्हें भावग्राहक भगवान् के निमित्त सर्वसाधारण के सामने एकत्र करके रख दिया है।

सारद सेष महेस बिधि आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई ।
तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥
तहाँ बेद अस कारन राखा ।
भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा ॥
एक अनीह अरूप अनामा ।
अज सच्चिदानंद परधामा ॥
व्यापक बिस्वरूप भगवाना ।
तेइ धरि देह चरित कृत नाना ॥ १०-१८ से २३
सारद दारुनारि सम स्वामी ।
राम सूत्रधर अंतरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी ।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
प्रनवउँ सोइ कृपालु रघुनाथा ।
बरनउँ बिसद तासु गुनगाथा ॥ ५४-१६ से २१
महिमा नाम रूप गुनगाथा ।
सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥
निज निज मति मुनि हरिगुन गावहिं ।
निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥

तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता ।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा ।
तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥ ४८४-१ से ४

निरुपम न उपमा आन रामसमान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै ॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भावगाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥ ४८४-११ से २२

आराध्य

आराध्य के विवेचन से भक्तिशास्त्र का विषय प्रारम्भ होता है।

पूर्वार्ध

राम

राम कवन मैं पूछहुँ तोही ।
कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ॥ २७-१८

गोस्वामीजी ने आराध्य को रामरूप में ही देखा है ; क्योंकि राम ही उनके इष्टदेव थे—

जासु कथा कुंभज रिषि गाई ।
भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा ।
सेवत जाहि सकुर मुनि धीरा ॥ २९-२२, २३

(अ) राम ब्रह्म हैं

गिरिजा ने राम को मनुष्य समझकर कहा—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥

बिस्नु जो सुरहित नरतनुधारी ।
सोउ सरबग्य जथा त्रिपुरारी ॥

खोजइ सो कि अग्य इव नारी ।
ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥ २१-१४ से १७

उत्तर में शंकरजी तर्क को नहीं, वरन् विश्वास को प्रधानता देते हुए कहते हैं—

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना ।
जेहि स्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोहपिसाच ।
पाखंडी हरिपदबिमुख जानहिं झूठ न साँच ॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी ।
काई बिषय मुकुर मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेखी ।
सपनेहु संतसभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी ।
जिन्हहिं न सूझ लाभ नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नयनबिहीना ।
रामरूप देखहिं किमि दीना ॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका ।
जलपहिं कलपित बचन अनेका ॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं ।
तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे ।
ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥

जिन्ह कृत महामोह मद पाना।
तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना॥

असि निज हृदय बिचारि तजु संसय भजु रामपद। | ४८-१६ से २४
सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबिकर बचन मम॥ | ४९-१ से ४

राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥—४९-९,१०
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेस पुराना॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ॥

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी।
प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घनपटल निहारी।
झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाये।
प्रगट जुगल ससि तेहि के भाये।
उमा राम बिषयक अस मोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सबकर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ।
मायाधीस ग्यान - गुन - धामू ॥ ६६-१२से२१
जौं सपने सिर काटइ कोई ।
बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई ।
गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा ।
मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन-रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
गहइ घ्रान बिनु बास असेखा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान ॥

कासी मरत जंतु अवलोकी ।
जासु नाम बल करउँ बिसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी ।
रघुबर सब उर अंतरजामी ॥
बिबसहु जासु नाम नर कहहीं ।
जनम अनेक सञ्चित अघ दहहीं ॥

सादर सुमिरन जे नर करहीं ।
भववारिधि गोपद इव तरहीं ॥
राम सो परमातमा भवानी । | ४६-२६
तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ॥ | ६०-१ से १३

राम परमात्मा हैं, यह बात गोस्वामीजी ने अनेक स्थलों में स्पष्ट की है—

सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना ।
सोइ सरबग्य राम भगवाना ॥ ३०-१८

प्रभु जे मुनि परमारथबादी ।
कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी ॥
सेष सारदा बेद पुराना ।
सकल करहिं रघुपति-गुन-गाना ॥ ४६-३, ४

तुम्ह ब्रह्मादि जनक जगस्वामी ।
ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥ ७२-२४

जाकर नाम सुनत सुभ होई ।
मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥ ६२-२

जो आनन्दसिंधु सुखरासी ।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नामा ।
अखिल लोक दायक बिस्रामा ॥ ६३-१७, १८

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं ।
सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥
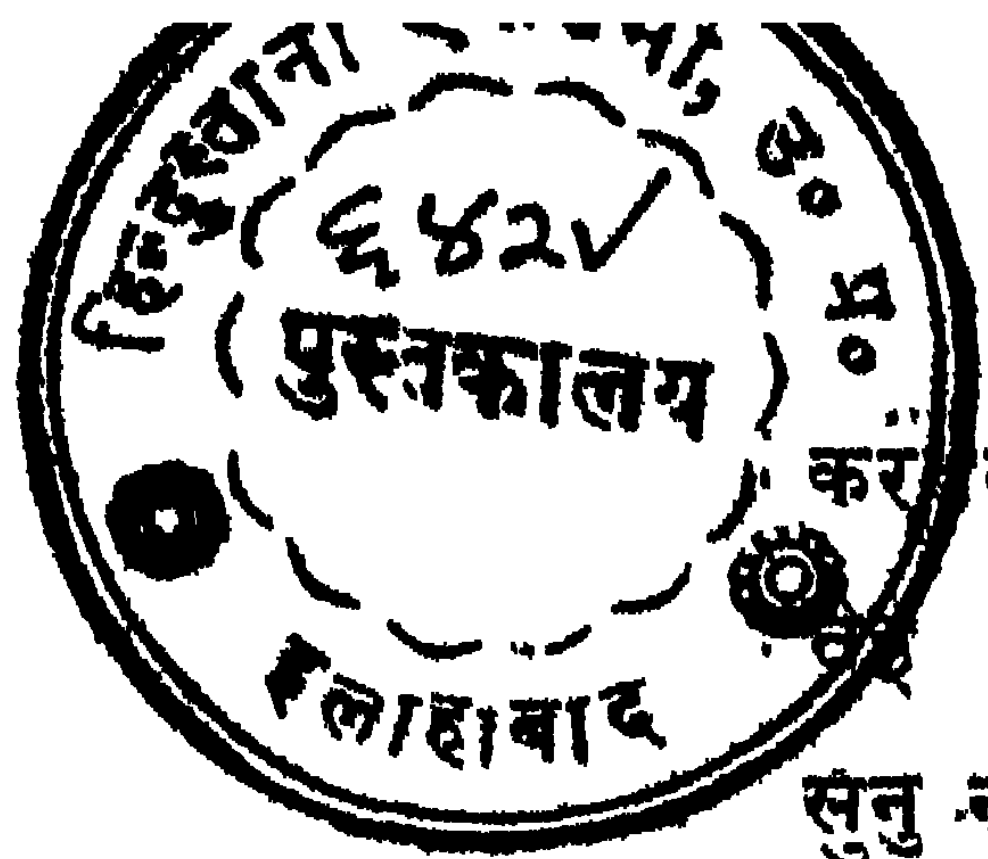
करतल होहिं पदारथ चारी ।
तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥ १४३-३, ४

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं ।
जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी ।
रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥ १७१-२१, २२

धरम धुरीन भानुकुल - भानू ।
राजा रामु स्वबस भगवानू ॥ २६८-१७

जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हरकोदंड ।
खरदूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरबंड ॥ ३१४-१२, १३

तात राम कहुँ नर जनि मानहु ।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
हम सब सेवक अति बड़ भागी ।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥ ३४०-४, ५

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया ।
पाइ जासु बल बिरचति माया ॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा ।
पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन ।
अंडकोस समेत गिरि कानन ॥
धरे जो बिबिध देह सुरत्राता ।
तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता ॥
हरकोदंड कठिन जेहि भंजा ।
तेहि समेत नृपदलमद गंजा ॥

खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली ।
बधे सकल अतुलित बलसाली ॥
जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जाकरि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ २५४-८से१५
जाके डर अति काल डराई ।
जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बैरु कबहुँ नहिं कीजै ।
मोरे कहे जानकी दीजै ॥ २५४-२४,२५
तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेस्वर कालहुँ कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता ।
ब्यापक अजित अनादि अनंता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी ।
कृपासिंधु मानुष तनुधारी ॥
जनरंजन भंजन खल ब्राता ।
बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥
ताहि बयरु तजि नाइय माथा ।
प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही ।
भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥
सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा ।
बिस्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रयताप नसावन ।
सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन ॥ ३३१-१०से२९

अति बल मधुकैटभ जेहिं मारे ।
महाबीर दितिसुत संहारे ॥
जेहि बल बाँधि सहजभुज मारा ।
सोइ अवतरेउ हरन महिभारा ॥ ३७५-२३,२४
तासु बिरोध न कीजिय नाथा ।
काल करम जिव जाके हाथा ॥ ३७५-२५
सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी ।
भजहु नाथ ममता सब त्यागी ॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी ।
भूप राजु तजि होहिं बिरागी ॥
सोइ कोसलाधीस रघुराया ।
आयउ करन तोहि पर दाया ॥ ३७६-७ से ६
सहसबाहु भुज गहन अपारा ।
दहन अनल सम जासु कुठारा ॥
तासु परसु सागर खर धारा ।
बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा ।
सो नर किमि दससीस अभागा ॥
राम मनुज कस रे सठ बंगा ।
धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥
पसु सुरधेनु कलपतरु रूखा ।
अन्न दान अरु रस पीयूखा ॥
बैनतेय खग अहि सहसानन ।
चिन्तामनि पुनि उपल दसानन ॥

सुनु मतिमन्द लोक बैकुंठा ।
लाभु कि रघुपतिभगति अकुंठा ॥ २८४-१से१५

सो नर क्यों दसकंध बालि बधेउ जेहि एक सर । २८८-१७

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु ।
अग जगनाथ अतुल बल जानहु ॥ २६०-११

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान ।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥
कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥ २६६-४ से ८

इसीलिए भक्तप्रवर शंकर ने रामजी की वन्दना भी किस प्रकार की है—

झूठउ सत्य जाहि बिनु जाने ।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने ॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई ।
जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू ।
सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥ ४७-१३से१५

(१) निराकार ब्रह्म

(१) वे सर्वव्यापी हैं—

जड़ चेतन जगजीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुगपानि ॥ ७-१७,१८

राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी ।
सर्बरहित सब उरपुरबासी ॥ ६०-२४

पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ ॥ २१३-२८,२६

पुनि सरबग्य सरब उर बासी ।
सरबरूप सबरहित उदासी ॥ ३६६-२

बिस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥

पद पाताल सीस अजधामा ।
अपर लोक अँग अँग बिस्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला ।
नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा ।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी ।
मारुत स्वास निगम निजु बानी ॥
अधर लोभ जमु दसन कराला ।
माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा ।
उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोमराजि अष्टादसभारा ।
अस्थि सयल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना ।
जगमय प्रभु की बहु कलपना ॥

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान । { ३७३-२१से२६
मनुज बास चर अचरमय रूप रामु भगवान ॥ { ३८०-१से ६

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा ।
माया - मोह - पार परमीसा ॥ ४६१-१

(२) वे गुणातीत हैं—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥ २१६-१५,११

सोइ सच्चिदानन्दघन रामा ।
अज बिग्यानरूप बलधामा ॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता ।
अखिल अमोघ शक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता ।
सबदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निर्मोहा ।
नित्य निरंजन सुखसंदोहा ॥
प्रकृतिपार प्रभु सब उरबासी ।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥ ४७५-२ से ७

मायासंभव भ्रम सकल अब न ब्यापिहहिं तोहि ।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥ ४८१-८,६

(३) वे परम शक्तिशाली हैं—

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे ।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा ।
अउर तुम्हहि को जाननिहारा ॥ २१६-१७,१८

बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला ।
माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई ।
जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि बिचार जिय देखहु नीके ।
रामरजाइ सीस सबही के ॥ २६८-२१से२३

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी ।
भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥ २८५-२०
ऊमरि तरु बिसाल तव माया ।
फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जंतु समाना ।
भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फलभच्छक कठिन कराला ।
तव भय डरत सदा सोउ काला ॥ ३०६-२५से२७

राम तेज बल बुधि बिपुलाई ।
सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥ ३६८-८

जय राम जो तृन तें कुलिस कर कुलिस तें तृन कर सही ॥ ४१३-८

राम काम सत कोटि सुभग तन ।
दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा ।
नभ सतकोटि अमित अवकासा ॥

मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास ।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥

प्रभु अगाध सत कोटि पताला ।
समन कोटि सत सरिस कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन ।
नाम अखिल अघपूग नसावन ॥
हिम गिरिकोटि अचल रघुबीरा ।
सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सत कोटि समाना ।
सकल कामदायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई ।
बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
बिस्नु कोटि सम पालनकरता ।
रुद्र कोटि सत सम संहरता ॥
धनद कोटि सत सम धनवाना ।
माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा ।
निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥ ४८४-२ से १८

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक तें हीन ।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन ॥ २०२-२०,२१

महिमा निगम नेति करि गाई ।
अतुलित बल प्रताप प्रभुताई ॥ २०३-१४

(२) साकार ब्रह्म

(१) निराकार ब्रह्म साकार क्यों बनता है? सुनिए—

एक अनीह अरूप अनामा ।
अज सच्चिदानंद परधामा ॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना ।
तेइ धरि देह चरित कृत नाना ॥ १०-२२,२३
सो केवल भगतन्ह हित लागी । ११-१
परमकृपाल प्रनत अनुरागी ॥

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति मायाधनी । २६-२४,२५
अवतरेउ अपने भगतहित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥ ३०-१,२

हरि अवतार हेतु जेहि होई ।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी ।
मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना ।
जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही ।
समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी ।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज स्रुतिसेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजनम कर हेतु ॥
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं ।
कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ॥
रामजनम कै हेतु अनेका ।
परम बिचित्र एक ते एका ॥ ६१-१० से २०
अगुन अखंड अनंत अनादी ।
जेहि चिंतहि परमारथबादी ॥
नेतिनेति जेहि बेद निरूपा ।
चिदानंद निरुपाधि अनूपा ॥
संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना ।
उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई ।
भगत हेतु लीला तनु गहई ॥ ७०-१२ से १५
बिप्र धेनुसुरसंतहित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुनगोपार ॥ ६१-१६, २०
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नानाबिधि करत चरित्र अनूप ॥ ६७-५, ६
रामु ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकलबिकार रहित गतभेदा ।
कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥ २०६-६ से १२

सत्यसंधपालक स्रुति सेतू ।
राम जनमु जग मंगल हेतू ॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सुख त्यागि ॥ ३४०-६,७

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे ।
धरउँ देह नहिं आन निहोरे ॥ ३६५-१०

भगतहेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥ ४७५-६ से १२

(२) निराकार ब्रह्म साकार कैसे बनता है ? सुनिए—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेमबस सगुन सो होई ॥
जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे ।
जलु हिमउपल बिलग नहिं जैसे ॥ ५६ ५ से
बैठे सुर सब करहिं बिचारा ।
कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई ।
कोउ कह पयनिधि महँ बस सोई ॥

जाके हृदय भगति जस प्रीती ।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती ॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ ।
अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥
हरि ब्यापक सरबत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीं ।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जगमय सबरहित बिरागी । { ८७-२१से २४
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥ { ८८-१ से २
अगुन अलेख अमान एकरस ।
राम सगुन भये भगत प्रेमबस ॥
राम सदा सेवकरुचि राखी ।
बेद पुरान साधु सुरसाखी ॥ २४४-६, ७

वह अजन्मा है, इसलिए "उत्पन्न" नहीं "प्रकट" होता है।

भगतबछल प्रभु कृपानिधाना ।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥ ७१-१२

जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिस्राम ॥ ६१-२

(३) साकार होते हुए भी राम आखिर ब्रह्म ही हैं, इसलिए वे अद्वितीय हैं—

देखे सिव बिधि बिस्नु अनेका ।
अमित प्रभाउ एक तें एका ॥

बंदत चरन करत प्रभु सेवा ।
बिबिध बेष देखे सब देवा ॥
सती बिधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप ।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥
देखे जहँ तहँ रघुपति जेते ।
सक्तिन्हसहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे संसारा ।
देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेखा ।
रामरूप दूसर नहिं देखा ॥ ३१-९ से ११
देखरावा मातहिं निज अद्‌भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन ।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल करम गुन ग्यान सुभाऊ ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी ।
अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावइ जाही ।
देखी भगति जो छोरइ ताही ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा ।
नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा ॥ ६९-१३से१६
लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता ।
भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता ॥

नरगंधर्व भूत बेताला ।
किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला ॥
देव दनुजगन नाना जाती ।
सकल जीव तहँ आनहिं भाँती ॥
महि सरिसागर सर गिरि नाना ।
सब प्रपंच तहँ आनहिं आना ॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा ।
देखेउँ जिनिस अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रतिभुवन निनारी ।
सरजू भिन्न भिन्न नरनारी ॥
दसरथ कौसल्या सुनु ताता ।
बिबिधरूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रतिब्रह्मांड राम अवतारा ।
देखेउँ बालबिनोद अपारा ॥

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अतिबिचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु रामु न देखेउँ आन ॥ ४७१-३ से १२

सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।
सो एक राम अकामहित निरबानप्रद सम आनको ॥
जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हूँ ।
पायेउ परम बिसराम रामसमान प्रभु नाहीं कहूँ ॥ ५०१-१६ से २१

(आ) राम विष्णु हैं ।

दाशरथि राम में परब्रह्म की वही छटा प्रदर्शित की गई है, जो वैष्णव भाव से उनके पास आई थी। स्तुतियाँ देखने से विदित

होगा (जो आगे लिखी जानेवाली हैं) कि वे "हरि" "शचीपति-प्रियानुज" आदि कहे गये हैं और उनके पूर्वरूप तथा अवतारों में केवल वैष्णव भाव ही को प्राधान्य दिया गया है। निम्न पंक्तियों में भी वही विषय देखिए—

तेहि अवसर भंजन महिभारा।
हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥ २८-१४

भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ।
धरिहहिं बिस्नु मनुजतनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा।
होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥ ६८-१४,१५

लोचन अभिरामं तनुघनस्यामं निज आयुध भुजचारी। ६१-५

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ।
नरनारायन की तुम्ह दोऊ॥

जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार॥ ३२८-१६से१८

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा।
सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥ ४६६-२२

वे विष्णु के पूर्ण अवतार और आधिदैविक भाव के कारण निश्चय ही अतिमानवी शक्ति रखते हैं। उनकी इस महत्ता की सूचना के लिए निम्नलिखित उद्धरण पर्याप्त हैं—

पञ्चतत्त्वों पर आधिपत्य—

गगन समीर अनल जल धरनी।
इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी॥

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला ।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकर - धनु तोरा ।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥ १२०-६ से १२

जड़तत्त्व पर आधिपत्य—

देत चाप आपुहि चलि गयऊ ।
परसुराम मन बिस्मय भयऊ ॥ १३०-२०
परसि चरनरज अचर सुखारी ।
भये परमपद के अधिकारी ॥ २२४-१
सरिता बनगिरि अवघटघाटा ।
पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया ।
करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥ ३०३-४,५
सब तरु फरे रामहित लागी ।
रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी ॥ ३७५-६

अनेकरूपता से जीवतत्त्व पर भी आधिपत्य—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा ।
मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा ॥ ६५-११
प्रेमातुर सब लोग निहारी ।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला ।
जथाजोग मिले सबहिं कृपाला ॥ ४४४-२६,२७

वैष्णव भाववाले होते हुए भी राम अनेक कल्प के करोड़ों

विष्णुओं की शक्ति रखते थे। इसलिए गोस्वामीजी ने त्रिदेवों तथा पञ्चदेवों में सम्मिलित करके विष्णु को न केवल राम का भक्त ही बताया है, वरन् उनकी शक्ति के आगे इन्हें (विष्णु को) नीचा दिखाने में भी नहीं हिचके हैं।

(१) रामभक्ति में निरत त्रिदेव तथा पञ्चदेव —

ब्रह्मा—ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरउ तोर सहाई॥ ८७-१७,१८

विष्णु—हरिहित सहित रामु जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे॥ १४४-२

महेश—जय सच्चिदानंद जगपावन।
अस कहि चलेउ मनोजनसावन॥ २६-८

गौरी—तब कर अस बिमोह अब नाहीं।
रामकथा पर रुचि मन माहीं॥ २६-१२

गणेश—महिमा जासु जान गनराऊ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥ १४-१३

सूर्य—यह रहस्य काहू नहिं जाना।
दिनमनि चले करत गुनगाना॥ ६३-३

(२) राम के आगे विष्णु की न्यूनता—

रामबिरोध न उबरसि सरन बिस्नु अजईस॥ ३६८-१३

(३) राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

आकृति और प्रकृति दोनों दृष्टियों से राम आदर्श पुरुष हैं।

बाह्य छवि

(सौंदर्य)

राम के शारीरिक सौन्दर्य के विषय में जो "सतपंच" चौपाइयाँ महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं, वे प्रारंभिक दोहे के साथ इस प्रकार हैं—

नीलसरोरुह नीलमनि नीलनीरधर स्याम ।
लाजहिं तनुसोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥

सरदमयंक बदन छबि सीवा ।
चारु कपोल चिबुक दरग्रीवा ॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा ।
बिधुकरनिकर बिनिंदक हासा ॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी ।
चितवनि ललित भावती जी की ॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी ।
तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा ।
कुटिल केस जनु मधुपसमाजा ॥
उर स्रीबत्स रुचिर बनमाला ।
पदिक हार भूपन मनिजाला ॥
केहरिकंधर चारु जनेऊ ।
बाहु बिभूपन सुंदर तेऊ ॥
करिकर सरिस सुभग भुजदंडा ।
कटि निषंगकर सर कोदंडा ॥ ७१-१३से२२

पदराजीव बरनि नहिं जाहीं।
मुनि मनमधुप बसहिं जिन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला।
आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥ ७१-२४,२६
छबिसमुद्र हरिरूप बिलोकी।
एकटक रहे नयनपट रोकी॥ ७२-३
स्यामगौर सुन्दर दोउ जोरी।
निरखहिं छबि जननी तृन तोरी॥ ९४-१
हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा।
सूचत किरन मनोहर हासा॥ ९४-३
कामकोटि छबिस्याम सरीरा।
नीलकंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरनपंकज नख जोती।
कमलदलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिसध्वज अंकुस सोहइ।
नूपुरधुनि सुनि मुनि मन मोहइ॥
कटिकिंकिनी उदर त्रय रेखा।
नाभि गँभीर जान जिन्ह देखा॥
भुज बिसाल भूषनजुत भूरी।
हिय हरिनख सोभा अति रूरी॥
उरमनिहार पदिक की सोभा।
बिप्रचरन देखत मन लोभा॥
कंबुकंठ अति चिबुक सुहाई।
आनन अमित मदनछबि छाई॥

दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे ।
नासा तिलक को बरनइ पारे ॥
सुन्दर स्रवन सुचारु कपोला ।
अतिप्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे ।
बहु प्रकार रचि मातु सवाँरे ॥
पीत झगुलिया तनु पहिराई ।
जानुपानि बिचरनि मोहिं भाई ॥ १४-७ से १७
कौसल्या जब बोलन जाई ।
ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई ॥ १६-७
धूसरि धूरि भरे तनु आये ।
भूपति बिहँसि गोद बैठाये ॥ १६-१
करतल बान धनुष अति सोहा ।
देखत रूप चराचर मोहा ॥ १६-१८
अरुन नयन उर बाहु बिसाला ।
नील जलज तनु स्याम तमाला ॥
कटिपट पीत कसे बर भाथा ।
रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई ।
बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥ १८-१६ से २१
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा ।
लोचन सुखद बिस्वचित चोरा ॥ १०२-१
मूरति मधुर मनोहर देखी ।
भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेखी ॥ १०२-४

सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता ।
आनँदहू के आनँददाता ॥ १०२-१८
पीतबसनपरिकर कटि भाथा ।
चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तनु अनुहरत सुचंदन खोरी ।
स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरिकंधर बाहु बिसाला ।
उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन ।
बदन मयंक ताप त्रय मोचन ॥
कानन्हि करनफूल छबि देहीं ।
चितवत चितहिं चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी ।
तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥ १०३-१३ से १८
सोभासीवँ सुभग दोउ बीरा ।
नीलपीत जलजाभ सरीरा ॥
मोरपंख सिर सोहत नीके ।
गुच्छे बिचबिच कुसुम कली के ॥
भाल तिलक स्रमबिंदु सुहाये ।
स्रवन सुभग भूषन छबि छाये ॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे ।
नवसरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला ।
हास बिलास लेत मन मोला ॥

मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं ।
जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवाँ ।
कामकलभ कर भुज बलसींवाँ ॥
सुमनसमेत बामकर दोना ।
साँवर कुअँर सखी सुठि लोना ॥ १०६-९ से १२
सहज मनोहर मूरति दोऊ ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥
सरदचंद निंदक मुख नीके ।
नीरज नयन भावते जीके ॥
चितवनि चारु मार मद हरनी ।
भावत हृदय जात नहिं बरनी ॥
कल कपोल स्रुति कुंडल लोला ।
चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ॥
कुमुदबंधुकर निंदक हासा ।
भृकुटी बिकट मनोहर नासा ॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं ।
कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं ॥
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई ।
कुसुमकली बिच बीच बनाई ॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ ।
जनु त्रिभुवनसोभा की सीवाँ ॥ ११२-१३
कटि तूनीर पीतपट बाँधे ।
कर सर धनुष बाम वर काँधे ॥

पीत जग्यउपबीत सोहाये ।
नखसिख मंजु महा छबि छाये ॥ ११३-२३,२४
केकि कंठ दुति स्यामल अंगा ।
तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा ॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाये ।
मंगलमय सब भाँति सुहाये ॥
सरद बिमल बिधु बदन सुहावन ।
नयन नवल राजीव लजावन ॥१४३-१३ से १५
कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं ।
नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥ १४६-६
रामसीय सुंदर परिछाहीं ।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा ।
देखत रामुबिबाहु अनूपा ॥ १४६-११,१२
रामु सीयसिर सेंदुर देहीं ।
सोभा कहि न जात बिधि केहीं ॥
अरुन पराग जलजु भरि नीके ।
ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥ १४६-१६,१७
स्याम सरीरु सुभाय सुहावन ।
सोभा कोटि मनोज लजावन ॥
जावकजुत पदकमल सुहाये ।
मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये ॥
पीत पुनीत मनोहर धोती ।
हरति बालरबि दामिनि जोती ॥

कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर ।
बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
पीत जनेउ महा छबि देई ।
करमुद्रिका चोरि चितु लेई ॥
सोहत ब्याहसाज सब साजे ।
उर आयत उरु भूषन राजे ॥
पियर उपरना काखा सोती ।
दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुंडल काना ।
बदनु सकल सौंदर्जनिधाना ॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा ।
भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥
सोहत मौरु मनोहर माथे । ⎧ ३४१-१७ से २३
मंगलमय मुकुतामनि गाथे ॥ ⎩ ३४२-१ से ३
बहुरि राम पद पंकज धोये ।
जे हर हृदयकमल महँ गोये ॥ ३४३-२
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे ।
तून कसे कर सर धनु काँधे ॥ २६२-२४
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा ।
जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
करकमलनि धनुसायकु फेरत ।
जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥ २६३-२,३
श्याम तामरस दाम शरीरं ।
जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं ॥

पानि चापसर कटि तूनीरं ।
नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥ ३०५-५,६
अरुन नयन राजीव सुवेशं ।
सीता नयन चकोर निशेशं ॥ ३०५-६
सरसिज लोचन बाहु बिसाला ।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । { ३१६-२८
सबरी परी चरन लपटाई ॥ { ३२०-१
स्याम गात सिर जटा बनाये ।
अरुन नयन सर चाप चढ़ाये ॥ ३३२-१६
स्याम सरोज दाम सम सुंदर ।
प्रभुभुज करिकर सम दसकंधर ॥ ३४६-१३
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन ।
स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥
सिंह कंध आयत उर सोहा ।
आनन अमित मदन मन मोहा ॥ ३६४-३,४
स्याम गात सरसीरुह लोचन ।
देखउँ जाइ तापत्रय मोचन ॥ ४०३-१
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े ।
नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥ ४४४-१२
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे ।
अंग अनंग देखि सत लाजे ॥ ४४७-१६
स्यामल गात सरोरुह लोचन ।
सुंदरता मंदिर भवमोचन ॥ ४५८-२१

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा ।
अंगअंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना ।
पदज रुचिर नख ससि दुतिहरना ॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी ।
नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥ ४७७-१ से ३
अरुन पानि नख करज मनोहर ।
बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
कंध बालकेहरि दर ग्रीवा ।
चारु चिबुक आनन छबिसीवा ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे ।
दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा ।
सकल सुखद ससिकर सम हासा ॥
नील कंज लोचन भवमोचन ।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाये ।
कुंचित कच मेचक छबि छाये ॥
पीत झीनि झिगुली तन सोही ।
किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूपरासि नृपअजिर बिहारी ।
नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥
मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा ।
बरनत मोहिं होति अति ब्रीड़ा ॥

किलकत मोहिं धरन जब धावहिं ।
चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ॥ ४७७-७ से १६

उनके बाह्य सौंदर्य ने नर और पशु, शिष्ट और दुष्ट सभी पर अपनी मोहिनी डाल दी थी तथा अभक्तों को भी भक्त बना दिया था। देखिए—

रामु लषन सिय रूपु निहारी ।
होहिं सनेह बिकल नरनारी ॥ २१३-२
मुदित नारि नर देखहिं सोभा ।
रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥ २१४-२८
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥ २१७-१३
खगमृग मगन देखि छबि होहीं ।
लिये चोरि चित रामु बटोही ॥ २१८-५
अस को जीवजंतु जग माहीं ।
जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ॥ २२३-५
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ ।
यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥
जबतें प्रभु पदपदुम निहारे ।
मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥ २६७-१४,१५
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी ।
तजहिं बिषम बिष तामस तीछी ॥
तेइ रघुनंदन लषनु सिय । २७१-२४,२५
प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी ।
थकित भई रजनीचरधारी ॥

सचिव बोलि बोले खरदूषन ।
यह कोउ नृपबालकु नरभूषन ॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते ।
देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जनमु सुनहु सब भाई ।
देखी नहिं अस सुंदरताई ॥ ३१०-७से१०

देखन कहुँ प्रभु करुनाकंदा ।
प्रगट भये सब जलचरबृंदा ॥
मकर नक्र झख नाना ब्याला ।
सत जोजन तन परम बिसाला ॥
ऐसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं ।
एकन्ह के डर तेपि डेराहीं ॥
प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे ।
मन हरषित सब भये सुखारे ॥ ३७४-२५से२८

आध्यात्मिक भावना के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न रूप का ध्यान किया जाता है—

जिन्हके रही भावना जैसी ।
प्रभुमूरति तिन्ह देखी तैसी ॥ ११२-२२

अद्वैतमतानुसार कोई केवल रामचन्द्र का ध्यान करते हैं—

पुनि मन बचन करम रघुनायक ।
चरनकमल बंदउँ सब लायक ॥
राजिवनयन धरे धनुसायक ।
भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥ १४-९,१०

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले स्रीरामु ।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनामु ॥ ३१७-१२-१३

इष्टदेव मम बालक रामा ।
सोभा बपुष कोटि सत कामा ॥ ४७६-१७
बालकरूप रामकर ध्याना ।
कहेउ मोहिं मुनि कृपानिधाना ॥ ४६७-२२

और द्विभुज रूप के आगे चतुर्भुज रूप को भी पसन्द नहीं करते—

भूपरूप तब रामु दुरावा ।
हृदय चतुर्भुज रूप देखावा ॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे ।
बिकल हीन मनि फनिबर जैसे ॥ ३०४-२१,२२

द्वैताद्वैत या द्वैतमतानुसार कोई सीतासहित राम का ध्यान करते हैं—

सीयराममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥ ७-२२

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥ १४-११,१२

उर धरि रामहिं सीय समेता ।
हरषि कीन्ह गुरु गवनु निकेता ॥ १६२-१०

विशिष्टाद्वैत या त्रैत मतानुसार कोई सीता और लक्ष्मण सहित राम का ध्यान करते हैं—

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ ।
बसहिं लषन सिय रामु बटाऊ ॥
रामधाम पथु पाइहि सोई ।
जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई ॥ २१८-८,६

सीता अनुजसमेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर सगुनरूप स्रीराम ॥ ३०३-१९,२०

अनुज जानकी सहित प्रभु चापबान धर रामु ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा यह कामु ॥ ३०६-३,४

यह बर माँगउँ कृपा निकेता ।
बसहु हृदय स्रीअनुज समेता ॥ ३०७-१

तथा रामरहस्योपनिषद् के मतानुसार कोई साङ्गोपाङ्ग उनका ध्यान करते हैं—

सैल सृंग एक सुंदर देखी ।
अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए ।
लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला ।
तेहिं आसन आसीन कृपाला ॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा ।
बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना ।
कह लंकेस मंत्र लगि काना ॥
बड़भागी अंगद हनुमाना ।

चरन कमल चापत बिधि नाना ॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन ।
कटि निषंग कर बान सरासन ॥
एहि बिधि करुनासील गुनधाम रामु आसीन ।
धन्य ते नर ध्यान एहि जे रहत सदा लवलीन ॥ ३७८-१से६

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत जे ।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥
स्रीसहित दिनकरबंसभूषन काम बहु छबि सोहई ।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई ॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे ।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंत जे ॥ ४४८-७से१२

आन्तरिक छबि

(शक्ति और शील)

राम के गुण-कर्म स्वभाव अद्वितीय और अपरिमित हैं—

जेहि जन पर ममता अति छोहू ।
जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू ॥
गई बहोरि गरीब नेवाजू ।
सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुध बरनहिं हरिजस अस जानी ।
करहिं पुनीत सफल निज बानी ॥ ११-२से४
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी ।
खल दल दलन देव हितकारी ॥

नीति प्रीति परमारथु स्वारथु ।
कोउ न राम सम जान जथारथु ॥ २६८-१९,२०
प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी ।
पूज्य परम हित अंतरजामी ॥
सरल सुसाहिब सील निधानू ।
प्रनतपालु सरबग्य सुजानू ॥
समरथु सरनागत हितकारी ।
गुन गाहकु अवगुन अघहारी ॥
स्वामि गोसाइँहिं सरिस गोसाईं ।
मोहि समान मैं साइँ दोहाईं ॥ २८९-४से७
धरमधुरीन धीर नयनागर ।
सत्य सनेह सील सुखसागर ॥ २८७-१७

गुण—जयमंगल गुन ग्राम राम के ।
दानिमुकुति धन धरम धाम के ॥
सदगुरु ग्यान बिराग जोग के ।
बिबुध बैद भवभीम रोग के ॥
जननि जनक सियराम प्रेम के ।
बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥
समन पाप संताप सोक के ।
प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के ।
कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥
कामकोह कलिमल करिगन के ।
केहरि सावक जनमन बन के ॥

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के ।
कामद घन दारिद दवारि के ॥
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के ।
मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोहतम दिनकर कर से ।
सेवक सालिपाल जलधर से ॥
अभिमतदानि देव तरुबर से ।
सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ॥
सुकबि सरदनभ मन उडुगन से ।
रामभगत जन जीवन धन से ॥
सकल सुकृतफल भूरिभोग से ।
जगहित निरुपधि साधु लोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से ।
पावन गंग तरंग माल से ॥

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड । ⎰ २०-१६ से २४
दहन रामगुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ॥ ⎱ २१-१ से ७

बैरिउ राम बड़ाई करहीं ।
बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा ।
करि न सकहिं प्रभुगुनगन लेखा ॥ २४७-२०,२१

राम अमित गुनसागर थाह कि पावइ कोइ ।
संतन्ह सन जस कछु सुनेउँ तुम्हहिं सुनाएउँ सोइ ॥ ४८४-२३,२४

कर्म—करुनानिधि मन दीख बिचारी ।
उर अंकुरेउ गर्बतरु भारी ॥

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी ।
पन हमार सेवक हितकारी ॥ ६४-१६,१७
कुपथ माँगु रुज ब्याकुल रोगी ।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ ।
कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥ ६६-१,२
धरम-सेतु-पालक तुम्ह ताता ।
प्रेम - बिबस सेवक - सुखदाता ॥ १०३-८
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू ।
तुम्ह पालक संतत स्रुतिसेतू ॥ २१६-१०
सोइ गोसाइँ बिधिगति जेहि छेकी ।
सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥ २६६-६
कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे ।
दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हे ॥
स्रुतिपथ पालक धरम-धुरंधर ।
गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥ ४९४-२१,२२

स्वभाव—सठसेवक की प्रीतिरुचि रखिहहिं राम कृपालु ।
उपल किये जलजान जेहि सचिव सुमति कपि भालु ॥ १८-१७,१८

रहति न प्रभुचित चूक किये की ।
करत सुरति सय बार हिये की ॥ १८-२९
जेहि अघ बधेउ ब्याल जिमि बाली ।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी ।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी ॥

ते भरतहिं भेटत सनमाने ।
राजसभा रघुबीर बखाने ॥
प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान ॥
राम निकाई रावरी है सब ही को नीक ।
जो यह नीकी है सदा तौ नीको तुलसीक ॥ १६-१ से ७
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी ।
सेवत सुलभ सकल दुखहारी ॥ ६८-२६
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई ।
भजत कृपा करिहहिं रघुराई ॥ ६४-२६
को रघुबीर सरिस संसारा ।
सील सनेहु निबाहनिहारा ॥ १७६-१०
करुनामय मृदु राम सुभाऊ ।
प्रथम देखि दुखु सुना न काऊ ॥ १८९-१७
साहिब रामु राज के भूखे ।
धरमधुरीन विषय रस रूखे ॥ १८६-६
सीलु सकुच सुठि सरल सुभाऊ ।
कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा ।
मैं सिसु सेवकु जद्यपि बामा ॥ २४१-१०,११
समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जिय जोइ ।
जो न भजइ रघुबीरपद जग बिधि बंचित सोइ ॥ २४९-२८,२६
रामु जनमि जगु कीन्ह उजागर ।
रूप सील सुख सब गुनसागर ॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता ।
राम सुभाउ सबहिं सुखदाता ॥ २४७-१८,१९

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई ।
रामरोष पावक सो जरई ॥ २५४-२२,२३

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहिं सेवक परम पियारा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई ।
सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥ २५५-१,२

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ ।
अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥ २७१-१

देव देवतरु सरिस सुभाऊ ।
सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥
जाइ निकट पहिचान तरु छाँह समनि सब सोच ।
माँगत अभिमत पाव जगु राउ रंक भल पोच ॥ २७२-२१से२३

लरिकाइहि तें रघुबर बानी ।
पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ ।
सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥ २७६-७,८

कूर कुटिल खल कुमति कलंकी ।
नीच निसील निरीस निसंकी ॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आये ।
सकृत प्रनामु किये अपनाये ॥

देखि दोष कबहुँ न उर आने।
सुनि गुन साधुसमाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी।
आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने।
सेवक सकुच सोचु उर अपने॥ २८९-१२से१४

सीलु सराहि सभा सब सोची।
कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥ २९०-२७

अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह॥ २९१-११

कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहिकर बध उचित।
प्रभु छाँडेउ करि छोह को कृपालु रघुबीर सम॥ २९१-२७,२८

जासु कृपा अज सिव सनकादी।
चहत सकल परमारथबादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पियारे।
दीनबंधु मृदु बचन उचारे॥
अब जानी मैं स्री चतुराई।
भजिय तुम्हहिं सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई।
ताकर सील कस न अस होई॥ ३०२-१०से१२

कोमल चित अति दीनदयाला।
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिषभोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी ।
हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥ ३१६-१२से१४

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ ।
जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥ ३२३-२२

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे ।
अस बिस्वास तजहु जनि भोरे ॥ ३२३-२४

कहहु कवन प्रभु कै असि रीती ।
सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी ।
ग्यानरंक नर मंद अभागी ॥ ३२५-१,२

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ ।
अति कृपालु रघुबीर सुभाऊ ॥
जानत हूँ अस प्रभु परिहरहीं । ⎧ ३३३-२६
काहे न बिपतिजाल नर परहीं ॥ ⎩ ३३४-१,२

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती ।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥ ३४८-११

प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि ।
गये सरन प्रभु राखिहहिं तव अपराध बिसारि ॥ ३५४-२६,२७

रामसुभाव उमा जेहि जाना ।
ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥ ३५६-१२

मम पन सरनागत भयहारी ॥ ३६३-१३

कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू ।
आये सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं ।
जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई ।
मोरे सनमुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥ २४३-१७से२१
जौं सभीत आवा सरनाई ।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥ २४३-२४
सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचरद्रोही ।
आवइ सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥ २४४-३ से ५
जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ २४४-२४,२५
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ ।
जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं ।
उर अपराध न एकउ धरिहीं ॥ २४८-२४,२५

गिरिजा रघुपति कै यह रीती ।
संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ॥ ३७४-१६
खल मनुजाद द्विजामिषभोगी ।
पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥
उमा रामु मृदुचित करुनाकर ।
बयरुभाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥
देहिं परम गति सो जिय जानी ।
अस कृपालु को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी ।
नर मतिमंद तें परम अभागी ॥ ३३४-१६से१६

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन ।
जोगिबृंद दुरलभ गति तोहिं दीन्हि भगवान ॥ ४२८-१०,११

रामसरिस को दीन हितकारी ।
कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥
खल मलधाम कामरत रावन ।
गति पाई जो मुनिवर पाव न ॥ ४३४-१२,१३
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ ।
दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥ ४४१-१६
सुनहु रामु कर सहज सुभाऊ ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥
संसृतिमूल सूलप्रद नाना ।
सकल सोकदायक अभिमाना ॥
तातें करहिं कृपानिधि दूरी ।
सेवक पर ममता अति भूरी ॥

जिमि सिसुतन ब्रन होइ गोसाईं ।
मातु चिराव कठिन की नाईं ॥

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधिनास हित जननी गनत न सो सिसुपीर ॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं कस न भजसि भ्रम त्यागि ॥ ४७६-९से१२

(ई) राम नर भी हैं और नारायण भी हैं ।

पाठकों को इस बात का बराबर ध्यान रहे, इसलिए गोस्वामीजी रामचन्द्रजी की ईश्वरता की ओर वारंवार संकेत करते गये हैं—

कबहूँ जोग बिजोग न जाके ।
देखा प्रगट बिरहदुख ताके ॥ २१-३
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा ।
तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा ॥ २१-८

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेमभगतिबस कौसल्या के गोद ॥ ६४-९,६

सुखसंदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेमबस कर सिसुचरित पुनीत ॥ ६४-१९,२०

मन क्रम बचन अगोचर जोई ।
दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥ ६६-९

निगम नेति सिव अंत न पावा ।
ताहिं धरइ जननी हठि धावा ॥ ६६-८

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी।
सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥ ६६-१६
भगतिहेतु बहु कथा पुराना।
कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥ ६६-१०
लवनिमेष महँ भुवननिकाया।
रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला।
चितवत चकित धनुषमखसाला॥ १०६-४,५
जासु त्रास डर कहँ डर होई।
भजन प्रभाउ देखावत सोई॥ १०६-७
जिन्हके चरनसरोरुह लागी।
करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते।
गुरुपदकमल पलोटत प्रीते॥ १०६-१४,१५
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमु भारू।
तेहि स्रमु यहु लौकिक ब्यवहारू॥

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुलकेतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृतिसागरसेतु॥ २०४-५ से ९

जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा।
जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ तें थोरा॥ २०६-१२-१
नरतनु धरेउ संत सुर काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा ।
जस काछिय तस चाहिय नाचा ॥ २१४-२२से२४

बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुनाऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ॥ २२३-५,६

जासु नाम पावक अघतूला ।
सुमिरत सकल सुमंगलमूला ॥
सुद्ध सो भयउ साधुसंमत अस ।
तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥ २६६-७,८
निगम नेति सिव ध्यान न पावा ।
मायामृग पाछे सो धावा ॥ ३१५-११
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई ।
सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥ ३१५-२३
पूरनकामु रामु सुखरासी ।
मनुजचरित कर अज अबिनासी ॥ ३१८-३
गुनातीत सचराचर स्वामी ।
रामु उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई ।
धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥ ३२२-११,१२
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा ।
ता कहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥
जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी ।
जिन्ह रघुबीरचरन रति मानी ॥ ३३६-२०,२१

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता ।
राजनीति राखत सुरत्राता ॥ ३३८-२३

जासु नाम जपि सुनहु भवानी ।
भवबंधन काटहिं नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बंध तर आवा ।
प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा ॥ ३५३-२४,२५

जगदातमा प्रानपति रामा ।
तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा ॥
उमा रामु की भृकुटि बिलासा ।
होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई ।
तासु दूतपन कहु किमि टरई ॥ ३८६-२०से२२

जासु प्रबल माया बिबस सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि देखावइ निसिचर निज माया मतिखोट ॥ ३९७-१७,१८

काल ब्याल कर भच्छक जोई ।
सपनेहु समर कि जीतिय सोई ॥ ३९९-१६

उमा एक अखंड रघुराई ।
नरगति भगत कृपालु देखाई ॥ ४०२-१

भृकुटिभंग कालहि जो खाई ।
ताहि कि सोहइ ऐसि लराई ॥
जगपावनि कीरति बिस्तरिहहिं ।
गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥ ४०४-२,३

ब्यालपास बस भयेउ खरारी ।
स्ववस अनंत एक अबिकारी ॥

नट इव कपट चरित कर नाना।
सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥
रनसोभा लगि प्रभुहिं बँधावा।
नागपास देवन्ह भय पावा॥ ४०८-२ से ४
लागि सक्ति मुरछा कछु भई।
प्रभुकृत खेल सुरन्ह बिकलई॥ ४२०-२३
उमा काल मर जाकी ईछा।
सोइ प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥ ४२६-१
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई।
केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥ ४३४-१०

मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥ ४३६-४,५

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥ ४५३-२५,२६

ग्यान गिरा गोतीत अज मायामनगुनपार।
सोइ सच्चिदानंदघन कर नरचरित उदार॥ ४५५-१४,१५

बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥ ४५५-१७

भवबंधन तें छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥ ४६६-३,४

यदि दूसरे की बहादुरी का प्रसंग आया तो वहाँ भी उन्होंने रामप्रताप ही की महिमा दी है—

उमा न कछु कपि कै अधिकाई ।
प्रभुप्रताप जो कालहि खाई ॥ ३४६-१३

प्रभुप्रताप तें गरुड़हिं खाइ परम लघु ब्याल । ३५२-१६

ताकहुँ प्रभु कछुँ अगम नहिं जापर तुम्ह अनुकूल ।
तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ॥ ३५६-८,६

स्रीरघुबीर प्रताप तें सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥ ३७४-२०,२१

उमा बिभीषनु रावनहिं सनमुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों स्रीरघुबीर प्रभाउ ॥ ४२१-८,६

यदि राम के चरित्र में कठोरता का प्रसंग आया तो यही कहकर रह गये कि—

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित खगेस रामकर समुझि परइ कहु काहि ॥ ४५३-३,४

और यदि रामचरित्र में श्रोताओं को शंका करते देखा तो कह उठे—

असि रघुपति लीला उरगारी ।
दनुजबिमोहनि जनसुखकारी ॥
जे मतिमलिन बिषयबस कामी ।
प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥
नयनदोष जा कहँ जब होई ।
पीतबरन ससि कहुँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा ।
सो कह पच्छिम उयेउ दिनेसा ॥

लीकारूढ़ चलत जग देखा ।
अचल मोहबस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी ।
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ॥
हरि विषइक अस मोह बिहंगा ।
सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा ॥
मायाबस मतिमंद अभागी ।
हृदय जवनिका बहु बिधि लागी ॥
ते सठ हठबस संसय करहीं ।
निज अग्यान राम पर धरहीं ॥
काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं मूढ़ परे तमकूप ॥ ४७२-१३से२३

इतना कहते हुए भी उन्हें मानना पड़ा है कि नरचरित्र में ईश्वरचरित्र की पूर्णता का रहस्य समझ लेना या समझा देना आसान नहीं—

अति विचित्र रघुपतिचरित जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमंद विमोहबस हृदय धरहिं कछु आन ॥ २१-४,५
उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोहबिमूढ़, जे हरि बिमुख न धरमरति ॥ २३३-१,२
गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भवपास ।
सो कि बंधतर आवइ व्यापक बिस्वनिवास ॥
चरित राम के सगुन भवानी ।
तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥

अस बिचारि जे तग्य बिरागी ।
रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥ ४०८-९सेद

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥ ४७९-२४,२५

यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ ।
जो जानइ रघुपतिकृपा सपनेहुँ मोह न होइ ॥ ५००-४,५

उनका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि नर में यदि मनुष्य नारायण के चरित्र देखना चाहता है अथवा नारायण के दर्शन करना चाहता है तो उसे तर्क का नहीं, वरन् श्रद्धा का सहारा लेना चाहिए। यही बात गिरिजा के प्रश्न पर शंकर के उत्तर से भी विदित होती है।

(उ) रामनाम

ब्रह्म राम, विष्णु राम और राजा राम. इन तीनों का समावेश एक ही नाम में हो जाता है। इसलिए रामनाम अपने नामियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। केवलमात्र नाम के भजन से निर्गुण और सगुण दोनों भावनावाले अपनी भावनाओं के अनुसार नामी के अधिकाधिक निकट होते चले जाते हैं। इसी विचार से गोस्वामीजी ने रामनाम की बहुत महिमा गाई है। देखिए—

बंदउँ रामनाम रघुबर को ।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
बिधि हरिहर मय बेदप्रान सो ।
अगुन अनूपम गुननिधान सो ॥

महामंत्र जोइ जपत महेसू।
कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नामप्रतापू।
भएउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहसनाम सम सुनि सिवबानी।
जपि जेईं पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को।
किय भूषन तियभूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

बरषा रितु रघुपतिभगति तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरनजुग सावन भादवँ मास॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ।
बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके।
राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता।
जगपालक बिसेषि जनत्राता॥

भगति सुतिय कल करन बिभूषन ।
जगहित हेतु बिमल बिधुपूषन ॥
स्वादु तोष सम सुगति सुधा के ।
कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जनमन मंजु कंज मधुकर से ।
जीह जसोमति हरि हलधर से ॥
एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरनन पर जोउ ।
तुलसी रघुबरनाम के बरन बिराजत दोउ ॥
समुझत सरिस नाम अरु नामी ।
प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी ।
अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू ।
सुनि गुनभेद समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहि रूप नाम आधीना ।
रूप ग्यान नहिं नामबिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जाने ।
करतलगत न परहिं पहिचाने ॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे ।
आवत हृदय सनेह बिसेखे ॥
नामरूप गति अकथ कहानी ।
समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

रामनाम मनिदीप धरु जीह-देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरउ जौं चाहसि उँजियार ॥

नाम जीह जपि जागहिं जोगी ।
बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा ।
अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ ।
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लउ लाये ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

१४-१३से२१
१५-१ से २४

सकल कामनाहीन जे रामभगति रस लीन ।
नामसुप्रेम पियूष ह्रद तिनहुँ किए मन मीन ॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्मस्वरूपा ।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते ।
किय जेहि जुग निज बस निज बूते ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की ।
कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एक दारुगत देखिय एकू ।
पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें ।
कहउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें ॥

व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी।
सत चेतन घन आनँदरासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥
निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥
राम भगत हित नर तनु धारी।
सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा।
भगत होहिं मुदमंगल बासा॥
राम एक तापसतिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की।
सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा।
दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ रामु आपु भवचापू।
भवभय भंजन नामप्रतापू॥
दंडकबन प्रभु कीन्ह सोहावन।
जनमन अमित नाम किय पावन॥
निसिचरनिकर दले रघुनंदन।
नाम सकल कलि-कलुष-निकंदन॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुनगाथ ॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ ।
राखे सरन जान सब कोऊ ॥
राम गरीब अनेक नेवाजे ।
लोक बेद बर बिरद बिराजे ॥
राम भालु कपि कटक बटोरा ।
सेतु हेतु स्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं ।
करहु बिचार सुजन मन माहीं ॥
राम सकुल रन रावनु मारा ।
सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
राजा रामु अवध रजधानी ।
गावत गुन सुर मुनि बरबानी ॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती ।
बिनु स्रम प्रबल मोहदल जीती ॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने ।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥

ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि ।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥

नामप्रसाद संभु अबिनासी ।
साज अमंगल मंगलरासी ॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी ।
नामप्रसाद ब्रह्म सुखभोगी ॥

नारद जानेउ नामप्रतापू ।
जगप्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू ।
भगतसिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनाऊँ ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू ।
अपने बस करि राखे रामू ॥
अपत अजामिल गज गनिकाऊ ।
भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई ।
रामु न सकहिं नामगुन गाई ॥

नाम रामु को कलपतरु कलिकल्यान निवास ।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास ॥

चहुँ जग तीनि काल तिहुँ लोका । { १६-४से२७
भये नाम जपि जीव बिसोका ॥ { १७-१से११
रामुनाम कलि अभिमतदाता ।
हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
रामुनाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू ।
नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

रामुनाम नर केसरी कनककसिपु कलिकालु ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु ॥

भाय कुभाय अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मङ्गल दिसि दसहूँ ॥ १८-१ से ६
रामुनाम कर अमित प्रभावा ।
सन्त पुरान उपनिषद् गावा ॥ २७-१४
जाकर नाम मरत मुख आवा ।
अधमहुँ मुकुत होइ स्तुति गावा ॥ ३१८-१२
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका ।
स्तुति कह अधिक एक तें एका ॥
रामु सकल नामन्ह तें अधिका ।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

राका रजनी भगति तव रामुनाम सोइ सोम । { ३२३-२६,२७
अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम ॥ { ३२४-१,२

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छंभुमुखेन्दुसुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा ॥
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं { ३२७-५,६
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ { ३२८-१,२

जासु नामबल संकर कासी ।
देत सबहिं समगति अबिनासी ॥ ३३३-२
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं ।
अति अपार भवसागर तरहीं ॥ ३४१-११

नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक ।
सुनिय तासु गुनग्राम, जासु नाम अघखग बधिक ॥ ३४२-१०,११
[illegible]थ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥ ३७३-८

यहि कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार ॥ ४३८-२३,२४

जासु नाम भवभेषज हरन घोर त्रय सूल ।
सो कृपालु मोपर सदा रहहु रामु अनुकूल ॥ ५०६-२१,२२
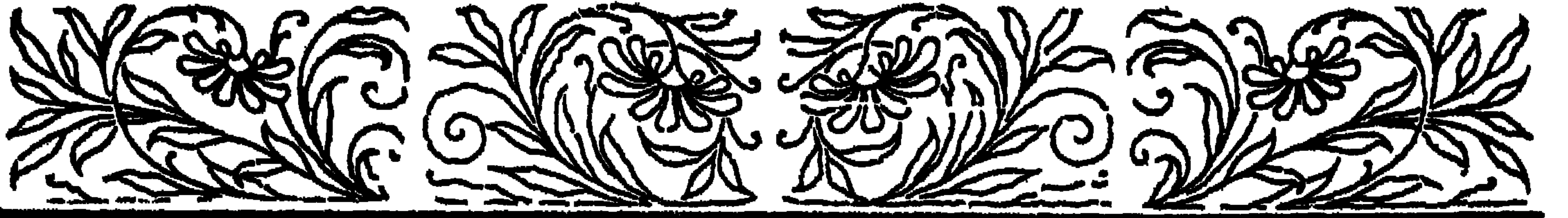
आराध्य

उत्तरार्द्ध

अन्यदेव

यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि गोस्वामीजी ने अन्य देवों, सन्तों, ब्राह्मणों और बड़ेबूढ़ों का मान रखते हुए भी राम ही की ओर अनन्य भक्ति दिखाई है। दूसरों को वे केवल राम के नाते ही सम्मान देते हैं—

> पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
> सब मानिअहि रामु के नाते॥ १४८-२९

(अ)

चतुर्व्यूह और पञ्चायतन

तीनों भाइयों के साथ मिलकर राम का चतुर्व्यूह बन जाता है और सीताजी को मिलाकर पञ्चायतन। इन सब का भगवान् राम के विशिष्ट अंग ही समझना चाहिए।

सीता

(१) इनका आधिभौतिक रूप देखिए—

बाह्यछवि—बिष बारुणी बन्धु प्रिय जेही ।
कहिय रमा सम किमि बैदेही ॥
जौं छबिसुधा पयोनिधि होई ।
परम रूपमय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू ।
मथइ पानिपंकज निज मारू ॥

एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥ ११९-६से१०

आन्तरिक छवि—पति अनुकूल सदा रह सीता ।
सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई ।
सेवति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी ।
बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई ।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥ ४४२-२३से२६

(२) इनका आधिदैविकरूप (लक्ष्मी का अवतार) देखिए—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रयलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ॥४२६-१७,१८

'राम बाम दिसि सोभित रमारूप गुनखानि ॥ ४४७-१६

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ।
सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ ॥ ५२५-१

(३) इनका आध्यात्मिक रूप देखिए।

आदिशक्ति (माया) का अवतार—

बामभाग सोभति अनुकूला।
आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥ ७१-२६
जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटिबिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई ॥ ७२-१,२
आदिसक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥ ७३-१६
आगे रामु लषनु बने पाछे।
तापस बेष बिराजत काछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥ २१७-२४, २५

श्रुतिसेतुपालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधानकी ॥ २१६-११,१२

सीय सासुप्रति बेस बनाई।
सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
लखा न मरमु रामु बिनु काहू।
माया सब सियमाया माहू ॥ २६७-२४, २५

उभय बीच सिय सोहइ कैसी ।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥ ३०३-३
उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता ।
जगदंबा संतत अनिंदिता ॥
जासु कृपाकटाच्छ सुर चाहत चितवन सोइ ।
रामपदारबिंदरति करति सुभावहि खोइ ॥ ४५५-३ से ५

परमशक्ति (ह्लादिनी लीला अथवा भक्ति) का अवतार—

नारद बचन सत्य सब करिहउँ ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥ ८६-६
लसत मंजु मुनिमंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यानसभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु ॥ २६३-४,५
सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर ।
भगति ग्यान बैराग जनु सोहत धरे सरीर ॥ २६४-८,६

भक्ति ही राम की परम प्रिया है ; उसके आगे माया नर्त्तकी के समान है । देखिए—

पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी ।
माया खलु नर्त्तकी बिचारी ॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया ।
तातें तेहि डरपति अति माया ॥ ४६६-२६,२७

भक्ति का अवतार होने के कारण ही सीताजी की वंदना इस प्रकार की गई है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम् ॥ २-३,४

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुणानिधान की॥
ताके जुग पदकमल मनावउँ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥ १४-७,८

लक्ष्मण

गोस्वामीजी ने लक्ष्मणजी को शेषावतार मानते हुए भी सर्वज्ञ नहीं माना (यहाँ शेष का अभिप्राय बहुत करके जीवशक्ति ही से है)—

बंदउँ लछिमन पदजलजाता।
सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका।
दंड समान भयउ जस जाका॥
सेष सहस्र सीस जग कारन।
जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मोपर।
कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥ १३-१७ से २०

लच्छनधाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥ ६३-२१,२२

इन्हके प्रीति परसपर पावनि।
कहि न जाइ मनभाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू।
ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥ १०२-११,२०

जो सहस सीसु अहीसु महि धरु लषनु सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज-तनु चले दलन खल निसिचर अनी ॥२१६-१३,१४

जीवनलाहु लषन भल पावा।
सबु तजि रामचरन मनु लावा ॥ २४१-२
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना ॥ ३१३-२५
जगदाधार अनंत किमि उठइ चले खिसिआय ॥
सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू।
जारइ भुवन चारि दस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही।
सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥ ३६८-२४से२६

ब्रह्मांड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रजकनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवनधनी ॥ ४१४-१०,१

कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता।
तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता ॥ ४१४-१६
सो माया रघुबीरहिं बाँची।
लछिमनु कपिन्ह सो मानी साँची ॥ ४१७ २१
बहु रामु लछिमन देखि मरकट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ॥४१८-१,२

भरत

भक्त का चरम रूप गोस्वामीजी के "भरत" में प्रस्फुटित हुआ है। इसलिए वे मानवता की सीमा में ही आबद्ध किये जाकर भी "राम की परछाहीं" कहे गये हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना ।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
रामचरन पंकज मन जासू ।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥ १३-१४,१५
बिस्वभरन पोषन कर जोई ।
ताकर नाम भरत अस होई ॥ ६३-१६
तात भरत तुम सब बिधि साधू ।
रामचरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं ।
तुम सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ॥ ३४६-२३,२४
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं ।
प्रेमपात्र तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥
लखन राम सीतहिं अति प्रीती ।
निसि सबु तुम्हहिं सराहत बीती ॥ २९०-२३,२४
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर के ।
सुख जीवन जग जस जड़ नर के ॥ २९१-२
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू ।
धरें देह जनु रामसनेहू ॥ २९१-४
सब साधनु कर सुफलु सुहावा ।
लखनु राम सिय दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा ।
सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥ २९१-२०,२१
जड़ चेतन मग जीव घनेरे ।
जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥

ते सब भये परमपद जोगू ।
भरतदरस मेटा भवरोगू ॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं ।
सुमिरत जिनहिं रामु मन माहीं ॥ २१४-८से१०
भरतसरिस को रामसनेही ।
जगु जप राम राम जप जेही ॥ २१४-२१
रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल ।
भगतसिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ॥ २१९-६,१०
सुनहु लषन भल भरतसरीसा ।
बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥ २६०-२
भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ ॥ २६०-३
लषन तुम्हार सपथ पितु आना ।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥ २६०-८
जौं न होत जग जनम भरत को ।
सकल धरमधुर धरनि धरत को ॥ २६०-१९
होत न भूतल भाउ भरत को ।
अचर सचर चर अचर करत को ॥
प्रेमु अमिय मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटे सुरसाधुहित कृपासिंधु रघुबीर ॥ २६२-१८से२०
अगम सनेहु भरत रघुबर को ।
जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥ २६३-२०
मिटिहहिं पापप्रपंच सब अखिल अमंगलभार ।
लोकु सुजसु परलोकु सुखु सुमिरत नाम तुम्हार ॥ २७२-८से१०

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी ।
भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं ।
निज गुन सील राम बस करतहिं ॥ २७३-१
सकल सुमंगलमूल जग भरतचरन अनुरागु ॥ २७३-२
मन थिर करहु देव डरु नाहीं ।
भरतहिं जानि राम - परछाहीं ॥ २७३-७
निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरत भरत सम जानि । २८१-१
भरत अमित महिमा सुनु रानी ।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥ २८१-२२
भरतु अवधि सनेह ममता की ।
जद्यपि रामु सींव समता की ॥ २८१-२६
परमारथु स्वारथु सुख सारे ।
भरत न सपनेहुँ मनहु निहारे ॥ २८१-२७
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी ।
सोउ न भरतमति सकइ निहारी ॥ २८४-५
भरत हृदय सियरामु निवासू ।
तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू ॥ २८४-७
कहत सुनत सतिभाउ भरत को ।
सीयरामपद होइ न रत को ॥ २८७-१४
सुमिरत भरतहिं प्रेमु रामु को ।
जेहि न सुलभ तेहि सरिस बामु को ॥ २८७-१५
जे बिरंचि निरलेप उपाये ।
पदुमपत्र जिमि जग जल जाये ॥

तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार ।
भये मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार ॥

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी ।
प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥ २९२-२०से२३

समुझब कहब करब तुम्ह जोई ।
धरमुसारु जग होइहि सोई ॥ २९५-२

असन बसन बासन ब्रत नेमा ।
करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी ।
मन तन बचन तजे तिनु तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई ।
दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥ २९५-८से११

लषनु रामु सिय कानन बसहीं ।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू ।
सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥ २९५-२६,२७

परम पुनीत भरत आचरनू ।
मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू ।
महा मोह निसि दलन दिनेसू ॥
पाप पुंज कुंजर मृगराजू ।
समन सकल संताप समाजू ॥

जनरंजन भंजन भवभारू।
रामसनेह सुधाकर सारू॥
सियरामप्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥
भरतचरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीयरामपद प्रेमु अवसि होइ भवरस बिरति॥ २६६-२ से ११

रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परमपुनीत सदगुनसिंधु सो॥
राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात॥ ४४२-२१से२३

शत्रुघ्न

इनका वर्णन बहुत थोड़ा है; क्योंकि रामचरित्र से इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध बहुत कम है। फिर भी इन्हें भगवान् का कनिष्ठ भ्राता और भक्त जान गोस्वामीजी ने इनका भी भक्तिपूर्वक स्मरण किया है—

रिपुसूदन पद कमल नमामी।
सूर सुसील भरत अनुगामी॥ १३-२१
जाके सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥ ६३-२०
भरत सत्रुहन दूनउ भाई।
प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥ ६३-२६

परिशिष्ट

भगवान् के चतुर्व्यूह में चारों की पूरी महिमा है—

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेइहउँ दिनकर बंस उदारा॥ ८९-२

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी।
बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥ ९३-२३

नृप समीप सोहहिं सुत चारी।
जनु धनु धरमादिक तनुधारी॥ १४०-१६

सोहत साथ सुभग सुत चारी।
जनु अपबरग सकल तनुधारी॥ १४३-८

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीवउर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥
मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्हसमेत निहारि।
जनु पाये महिपालमनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥ १५०-११से१४

यद्यपि भक्तों के प्रसंग में कभी कभी भगवान् उन्हें लक्ष्मण और भरत से भी अधिक मान दे देते हैं, यथा—

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥ ३२९-१४,१५

मम हित लागि जनम इन्ह हारे।
भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे॥ ४४६-३

परन्तु इन उक्तियों में कृतज्ञता की भावना ही का जोर अधिक समझना चाहिए।

(आ)

त्रिदेव और पंचदेव

त्रिदेवों की वन्दना—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल द्रवहु सकल कलिमलदहन ॥
नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ॥
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ३-९से१०

बंदउँ बिधि पदरेनु भवसागर जेहि कीन्ह जहँ ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥ १२-७,८

पञ्चदेवों का उल्लेख—

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी ।
गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥
रमा रमन पद बंदि बहोरी ।
बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी ॥ २७९-२३,२४

ये सब देव भगवान् राम के भक्त बताये गये हैं, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। इन देवों में भवानीशंकर का महत्त्व विशेष है (क्योंकि शंकर तो वैष्णवाग्रगण्य हैं और भवानी के कारण रामकथा का इस संसार में प्रचार हुआ)। इसी लिए इन दोनों का सीता और राम के साथ तादात्म्य ही सा बता दिया गया है। देखिए—

<u>भवानी</u>—मैना सत्य सुनहु मम बानी ।
जगदंबा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि ।
सदा संभु अरधंग निवासिनि ॥
जग संभव पालन लयकारिनि ।
निज इच्छा लीला बपुधारिनि ॥ ९०-१८से२०
जगदंबिका जानि भव बामा ।
सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥ ९२-३
जय जय गिरिबरराज किसोरी ।
जय महेस मुखचंद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता ।
जगतजननि दामिनि दुति गाता ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना ।
अमित प्रभाव बेद नहिं जाना ॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि ।
बिस्व बिमोहिनि स्वबस बिहारिनि ॥
पति देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख ॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी ।
बरदायिनि त्रिपुरारि पियारी ॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे ।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥ ११०-९से१२
<u>शंकर</u>—संकर जगतबंद्य जगदीसा ।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥ २६-११

संभुगिरा पुनि मृषा न होई ।
सिव सरबग्य जानु सब कोई ॥ २६-१८
चलत गगन भइ गिरा सुहाई ।
जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना ।
रामभगत समरथ भगवाना ॥ ३२-६,७
जगदातमा महेस पुरारी ।
जगतजनक सबके हितकारी ॥ ३५-३
दुराराध्य पै अहहिं महेसू ।
आसुतोष पुनि किये कलेसू ॥
जौं तपु करइ कुमारि तुम्हारी ।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥ ३७-१०,११
बरदायक प्रनतारति भंजन ।
कृपासिंधु सेवक मन रंजन ॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधे ।
लहिय न कोटि जोग जप साधे ॥ ३७-१३,१४
रुद्रहिं देखि मदन भय माना ।
दुराधर्ष दुर्गम भगवाना ॥ ४४-१२
सब सुर बिस्नु बिरंचि समेता ।
गये जहाँ सिव कृपानिकेता ॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा ।
भये प्रसन्न चंद्र अवतंसा ॥ ४५-१९,२०
तुम्ह जो कहेउ हर जारेउ मारा ।
सो अतिबड़ अबिबेक तुम्हारा ॥

तात अनल कर सहज सुभाऊ ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गये समीप सो अवसि नसाई ।
असि मनमथ महेस के नाई ॥ ४६-१६से१८

यह उमासंभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यानकाज बिबाह मंगल सर्बदा सुख पावहीं ॥ ५४-१,२

चरित सिंधु गिरिजारमन बेद न पावहिं पारु ।
बरनइ तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवारु ॥ ५४-३,४

सिवपदकमल जिन्हहिं रति नाहीं ।
रामहिं ते सपनेहुँ न सुहाहीं ॥ ५४-६

कुंद इंदु दर गौर सरीरा ।
भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना ।
नखदुति भगत हृदय तम हरना ॥
भुजग भूति भूखन त्रिपुरारी ।
आनन सरद चंद छबि हारी ॥

जटामुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल ॥ ५५-८ से १२

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी ।
त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नर देवा ।
सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥

प्रभु समरथ सरबग्य सिव सकल कला गुनधाम ।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥ ५५-१६से२२

मृगाधीशचर्म्माम्बरं मुण्डमालम्
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम्
अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम् ।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥
कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।
चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न यावद् उमानाथपादारविन्दम्
भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् ।
न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशम्
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम् ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ।
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम्
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥ ४६३-४ से २१

भवानीशंकर—भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ १-२,

गुरु पितु मातु महेस भवानी ।
प्रनवउँ दीनबंधु दिनदानी ॥

सेवक स्वामि सखा सियपी के ।
हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥
कलि बिलोकि जग हित हरगिरिजा ।
साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू ।
प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥ १२-१३से१६

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥ ४२-७,८

शंकर भी राम की तरह जगद्व्यवस्था के संरक्षक हैं—

तदपि साप सठ देइहउँ तोही ।
नीति बिरोध सुहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दंड करउँ खल तोरा ।
भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा ॥ ४६२-२३,२४

ब्रह्म को शङ्कर अथवा रामरूप से भजना भक्त के मन पर निर्भर है—

महादेव अवगुनभवन बिस्नु सकल गुनधाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥ ४५-२१,२२

यदि शङ्कर को भिन्न देव भी माना जाय तो भी उनसे द्रोह करना सदैव अनुचित है—

चातक रटत तृषा अति ओही ।
जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ॥ ३३६-६

(इ)

इन्द्रादि वैदिक देव

गोस्वामीजी ने इनकी ओर बहुत कम श्रद्धा दिखाई है, परन्तु प्राचीनता के नाते इनकी मानरक्षा भी कर दी है—

इनको फटकार—सुनासीर मन महुँ असि आसा ।
चहत देवरिषि मम पुर बासा ॥
जे कामी लोलुप जग माहीं ।
कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ॥
सूख हाड़ लेइ भाग सठ स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ॥ ६३-५से८
सकल कहहिं कब होइहि काली ।
बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा ।
चोरहिं चंदिनि राति न भावा ॥ १७४-१३,१४
ऊँच निवास नीच करतूती ।
देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥ १७५-२३
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की ।
सुरगन सभय धुकधुकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे ।
बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥ २६३-२२,२३
सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु ।
रचि प्रपंचु माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ॥ २८४-८,९
कपट कुचालि सीवँ सुरराजू ।
पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥

काक समान पाकरिपु रीती ।
छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमति करि कपटु सँकेला ।
सो उचाटु सबके सिर मेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे ।
रामप्रेम अतिसय न बिछोहे ॥
भये उचाट बस मन थिर नाहीं ।
छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं ॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी ।
सरित सिंधु संगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं ।
एक एक सन मरमु न कहहीं ॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू ।
सरिस स्वान मघवान जुबानू ॥ २८६-२०से२७
आये देव सदा स्वारथी ।
बचन कहहिं जनु परमारथी ॥ ४३१-१२ *

* इनको फटकारने का कारण शायद यह है कि इन्हें वे योगी नहीं, किन्तु भोगी समझते हैं—

देव दनुज नर किन्नर ब्याला ।
प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥ ४३-२३
इनकी दसा न कहेउँ बखानी ।
सदा काम के चेरे जानी ॥ ४४-१
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी—३३७-२१,१
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सुहाई ।
बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥ ५०१-२२

इनके सामान्य कार्य—

दुंदुभी बजाना और फूल बरसाना, जिसके लिए ग्रन्थ में पद पद पर प्रमाण विद्यमान हैं।

इनके प्रशस्य कार्य—

(१) राम की पर्णकुटी-रचना—

कोलकिरात बेष सब आये।
रचे परन तृन सदन सुहाये॥ २२२-१

रमेउ राम मनु देवन्ह जाना।
चले सहित सुरथपति प्रधाना॥ २२१-२६

प्रथमहिं देवन्ह गिरिगुहा राखी रुचिर बनाइ।
रामु कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ॥ २२४-८,९

(२) लक्ष्मण को चेतावनी देना—

जग भयमगन गगन भइ बानी।
लषन बाहुबल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा।
को कहि सकइ को जाननि हारा॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ।
समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लषन सकुचाने।
रामसीय सादर सनमाने॥ २९६-२१से२५

(३) राम के लिए दिव्य रथ भेजना—

देवन्हि प्रभुहिं पयादे देखा ।
उपजा उर अति छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा ।
हरषसहित मातलि लेइ आवा ॥
तेजपुंज रथ दिब्य अनूपा ।
हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ॥ ४१७-१५ से १७

इनकी मानरक्षा—

(१) वनगमनविषयक दोष से मुक्ति—

बिसमय हरष रहित रघुराऊ ।
तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुखदुखभागी ।
जाइय अवध देवहित लागी ॥ १७४-२०, २१

(२) राम से तुलना—

बहुरि कहहुँ छबि जसि मन बसई ।
जनु मधु-मदन मध्य रति लसई ॥ २१७-२६

उपमा बहुरि कहहुँ जिय जोही ।
जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥ २१८-१

राम लषन सीतासहित सोहत परननिकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥ २२९-१,२

(ई)

अन्य आराध्य

लोकमर्यादा तथा कविमर्यादानुसारः—

अनेक हैं, जिनमें वाणी और विनायक मुख्य हैं।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १-१,२

जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन ॥ ३-३,४

बिबुध बिप्र बुध ग्रहचरन बंदि कहउँ कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ १२-१,१०

भक्तिमर्यादानुसार—

अनेक हैं, जिनमें हनुमान्‌जी का स्थान बहुत प्रधान है, यद्यपि ये रामचरितमानस में स्पष्ट रूप से शंकरावतार नहीं कहे गये हैं—

महाबीर बिनवउँ हनुमाना ।
राम जासु जस आपु बखाना ॥
प्रनवउँ पवनकुमार खल बनपावक ग्यानघन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सरचापधर ॥ १३-२२,२३,२४

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३४४-७,८

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना ।
होहु तात बलसील निधाना ॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू ।
करहिं बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना ।
निर्भर प्रेममगन हनुमाना ॥ ३९२-१८से२०
हनूमान सम नहिं बड़भागी ।
नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई ।
बारबार प्रभु निज मुख गाई ॥ ४६९-१५,१६

(उ)

परिशिष्ट

देवताओं में पिता-पुत्र आदि के नाते बड़ाई-छुटाई नहीं है। देखिए, ब्रह्माजी शिवजी को मान दे रहे हैं और शिवजी गणेशजी को—

कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी ।
तदपि भगतिबस बिनवउँ स्वामी ॥
सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु ।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ॥ ४९-२२से२५
मुनिअनुसासन गनपतिहिं पूजेउ संभु भवानि ।
कोउ सुनि संसय करइ जनि सुर अनादि जिय जानि ॥ ५२-९,१०

आराधक

पूर्वार्द्ध
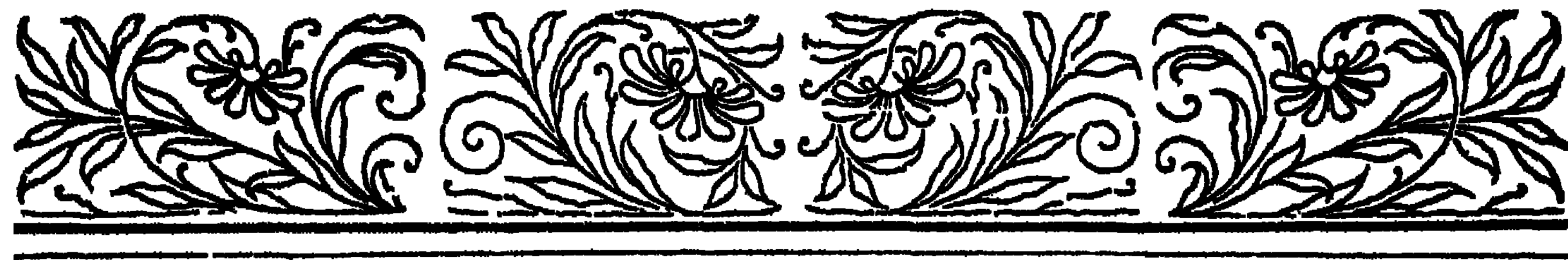
जीव

(अ) त्रिविध जीव—

जीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त करके गोस्वामीजी तीनों को आराधक बने रहने की सलाह देते हैं—

> बिषयी साधक सिद्ध सयाने ।
> त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
> रामसनेह सरस मन जासू ।
> साधुसभा बड़ आदर तासू ॥ २७७-१३,१४
>
> जीवन मुकुत महामुनि जेऊ ।
> हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥
> भवसागर चह पार जो पावा ।
> रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥
> बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुनग्रामा ।
> स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥ ४६६-१७से१६

विषयी लोग पक्के संसारी हैं, इसलिए नियति से खूब जकड़े हुए हैं। उन्हें उच्छृङ्खलता का कोई अधिकार नहीं। परन्तु वे (अपने जीवधर्मवश अथवा यों कहिए कि अविद्यामायावश या मूर्खतावश) उच्छृङ्खलता कर ही बैठते हैं और दुःख उठाते हैं—

जौं अहिसेज सयन हरि करहीं।
बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं।
तिन्हकहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।
सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं।
रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महँ जीव कि ईस समान॥

सुरसरि जलकृत बारुनि जाना।
कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे।
ईस अनीसहि अंतर तैसे॥ ३७-१से८
बिषयी जीव पाइ प्रभुताई।
मूढ़ मोहवस होहिं जनाई॥ २४८-१७

साधक लोगों के सम्बन्ध में गोस्वामीजी मानसरोग की सुन्दर बातें कहते हैं, ताकि वे आसानी से अपनी साधना में, अपनी रोग-मुक्ति में, कृतकार्य हो सकें—

सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जेहि तें दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला ।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा ।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना ।
ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई ।
हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
परसुख देखि जरनि सोइ छई ।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ ।
दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी ।
त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी ॥
जुगबिधि ज्वर मत्सर अबिबेका ।
कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका ॥

एक व्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहइ समाधि ॥
नेम धरम आचार तप ग्यान जग्य जप दान ।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी ।
सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥

मानसरोग कछुक मैं गाये ।
हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाये ॥

जाने तें छीजहिं कछु पापी ।
नास न पावहिं जन परितापी ॥

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे ।
मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥

रामकृपा नासहिं सब रोगा ।
जो एहि भाँति बनइ संजोगा ॥

सदगुरु बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय कै आसा ॥

रघुपति भगति सजीवनमूरी ।
अनूपान स्रद्धा मति पूरी ॥

एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं ।
नाहित जतन कोटि नहिं जाहीं ॥

जानिय तब मन बिरुज गोसाँई ।
जब उर-बल बिराग अधिकाई ॥

सुमति छुधा बाढ़इ नित नई ।
बिषय आस दुरबलता गई ॥ १०१-११ से २१

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई ।
तब रह रामभगति उर छाई ॥ १०१-१ से ६

सिद्ध जीवों के नमूने देख लीजिए—

(१) कर्मयोगी—हृदय न कछु फल अनुसंधाना ।
भूप बिबेकी परम सुजाना ॥
करइ जे धरमकरम मन बानी ।
बासुदेव अरपित नृप ग्यानी ॥ ७९-५, ६

(२) ज्ञानयोगी—सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन ।
जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी ।
बिगत बिकार जान अधिकारी ॥ २१९-१९ से २१

(३) भक्तियोगी—सुनु खगेस नहिं कछु रिषिदूषन ।
उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपासिंधु मुनिमति करि भोरी ।
लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥ ४६७-१६,१७

(आ) सन्त असन्त—

गोस्वामीजी ने साधक को सत्संग करने और असत्संग से दूर रहने की सलाह बड़े जोरदार शब्दों में दी है तथा "संग्रह-त्याग न बिनु पहिचाने" की नीति के अनुसार सन्त और असन्त के लक्षण भी विस्तार के साथ बता दिये हैं। एक साधु की हैसियत से तो वे दोनों की वन्दना ही करते हैं—

बंदउँ संत असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं ।
जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरासम साधु असाधू ।
जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निजनिज करतूती ।
लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू ।
गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू ॥ ६-१ से ६

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि जगजस अपजस दीन्ह ॥ ७-१५,१६

संत असंतन्ह कै असि करनी ।
जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

तातें सुर सीसन्ह चढ़त जगबल्लभ स्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥ ४६०-१७से२०

पर उपकार बचन मन काया ।
संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी ।
पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूरज तरु सम संत कृपाला ।
परहित नित सह बिपति बिसाला ॥

सन इव खल परबंधन करई ।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥ ५०३-२४ से २७

असन्त—सबसे बड़ा असन्त तो रावणरूपी अपना महा-मोह ही है, जो दूसों भोगसाधनों से त्रैलोक्यविजयी-सा बना बैठा है ।

हरिप्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ ।
सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ ॥ ८४-१८,१६

सुख संपति सुत सेन सहाई ।
जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई ।
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥ ८५-५, ६

ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी ।
दसमुख बसबर्त्ती नरनारी ॥ ८६-११

राम-रावण-युद्ध को ही भगवत्कृपा और अविद्या का संघर्ष अथवा भगवान् और शैतान की लड़ाई कहा जा सकता है । जब तक जगत् की लीला है, तब तक इस द्वन्द्व का अन्त नहीं—

श्रीराम रावन समरचरित अनेक कलप जो गावहीं ।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं ॥

ताके गुनगन कछु कहे जड़मति तुलसीदास ।
निज पौरुष अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास ॥ ४२६-१ से ४

मानव असन्त इस प्रकार कहे गये हैं—

(१) राक्षस—बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा ।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्हके यह आचरन भवानी ।
ते जानहु निसिचर सम प्रानी ॥ ८७-७ से ६

परद्रोही परदाररत परधन पर अपबाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥ ४६१-१३, १४

(२) दुर्जन—सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई ।
देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य जप दाना ।
सपनेहुँ सुनिय न बेद पुराना ॥ ८६-२३, २४
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी ।
जिमि दुरजन परसंपति देखी ॥ ३३६-८

(३) खल—बहुरि बंदि खलगन सतिभाये ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाये ॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे ।
उजरे हरष बिषाद घनेरे ॥
हरिहर जस राकेस राहु से ।
पर अकाज भट सहसबाहु से ॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी ।
परहित घृत जिनके मन माखी ॥

तेज कृसानु रोष महिषेसा।
अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केतु सम हित सबही के।
कुंभकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिमउपल कृषीदल गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा।
सहस बदन बरनइ परदोषा॥
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना।
पर अघ सुनइ सहसदस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही।
संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा।
सहस नयन परदोष निहारा॥
उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खलरीति।
जानि पानिजुग जोरि जनु बिनती करइ सप्रीति॥
मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा।
तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहि अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥ १-४से२३
भयदायक खल कै प्रिय बानी।
जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥ ३१४-१
दामिनि दमकि रह न घनमाहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥ ३३४-२१

छुद्र नदी भरि चली तोराई।
जस थोरेहु धन खल इतराई॥ ३३४-२४
निफल होहिं रावन सर कैसे।
खल के सकल मनोरथ जैसे॥ ४१६-२
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेखी।
जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों।
जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।
खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥ ४६१-७से१२
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन।
सिस्नोदरपर जमपुर त्रास न॥
काहू के जौं सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती।
सुखी भये मानहु जग नृपती॥
स्वारथरत परिवार बिरोधी।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं ।
आपु गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा ।
संतसंग हरिकथा न भावा ॥
अवगुनसिंधु मंदमति कामी ।
बेदबिदूषक परधन स्वामी ॥
बिप्रद्रोह सुरद्रोह बिसेषा ।
दंभ कपट जिय धरे सुबेषा ॥
ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक बृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४६१-१९से२४
काहू सुमति कि खल सँग जामी । ४६६-२६,१
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी ।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं ।
जिमि ससि हति हिमउपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू ।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥ ५०४-१से३

(४) द्रोही—गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही ।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥ ८७-११
बिफल होहिं सब उद्यम ताके ।
जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥ ४१६-१४
नर सरीर धरि जे परपीरा ।
करहिं ते सहहिं महाभव भीरा ॥ ४६१-२७
परद्रोही की होइ निसंका । ४६६-२४,१

सुखी कि होइ कबहु हरिनिंदक ॥४६६-२७,२

(५) कुछ अन्य असन्त—

छलबिहीन सुचि सरल सुबानी ।
बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु पिता सुत मारे ।
गाइ गोठ महिसुरपुर जारे ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें ।
मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥
जे पातक उपपातक अहहीं ।
करम बचन मनभव कबि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता ।
जौं यहु होइ मोर मत माता ॥

जे परिहरि हरिहर चरन भजहिं भूतगन घोर ।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर ॥

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं ।
पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी ।
बेदबिदूसक बिस्वबिरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुप चारा ।
जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा ।
जौं, जननी येहु संमत मोरा ॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे ।
परमारथ पथु बिमुख अभागे ॥

जे न भजहिं हरि नरतनु पाई।
जिन्हहिं न हरिहर सुजसु सुहाई॥
तजि स्रुतिपंथु बामपथु चलहीं।
बंचक बिरचि बेसु जगु छलहीं॥
तिन्हकइ गति मोहि संकर देऊ।
जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥ २३४-२से१५

सन्त—
सन्तों के विषय में गोस्वामीजी ने बहुत कुछ कहा है—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहि जग जसु पावा॥
मुद मंगलमय संतसमाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥
रामभगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि निसेधमय कलिमलहरनी।
करम कथा रबिनंदिनि बरनी॥
हरिहर कथा बिराजति बेनी।
सुनत सकल मुदमंगल देनी॥
बट बिस्वासु अचल निज धर्मा।
तीरथराज समाज सुकर्मा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥

अकथ अलौकिक तीरथराऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥
सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥
मज्जन फल देखिय ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥ ४-४से१५

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मोसन कहि जात न कैसे।
साकबनिक मनिगुनगन जैसे॥ ५-३,४

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ॥ ५-५,६

मधुकर सरिस सन्त गुनग्राही॥ ६-६,२

फलभर नम्र बिटप सब रहे भूमि नियराइ।
परउपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ ३२३-५,६

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ।
जिन्ह तें मैं उन्हके बस रहऊँ॥
षटबिकारजित अनघ अकामा।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी।
सत्यसंध कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना।
धीर भगतिपथ परम प्रबीना॥

गुनागार संसारदुखरहित बिगतसंदेह ।
तजि मम चरनसरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं ।
परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती ।
सरल सुभाव सबहिंसन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा ।
गुरु गोबिंद बिप्रपद प्रेमा ।
स्रद्धा छमा मइत्री दाया ॥
मुदिता मम पदप्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना ।
बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला ।
हेतु रहित परहित रत सीला ॥
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते ।
कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते ॥ ३२५-५से१८
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ।
गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा ।
स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥ ३३१-४से६

बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥ ३३४-२३
समिटि समिटि जल भरहि तलावा।
जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा॥ ३३४-२६
ससि संपन्न सोह महि कैसी।
उपकारी कै संपति जैसी॥ ३३५-८
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥ ३३५-२३
सरदातप निसि ससि अपहरई।
संत दरस जिमि पातक टरई॥ ३३६-१०
एहिसनु हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु तें होइ न कारज हानी॥ ३४७-२६
उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥ ३६२-१६

कोटि बिघ्न तें संतकर मन जिमि नीति न त्याग॥३८६-१४

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं।
जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥ ४५१-७
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता।
अगिनित स्रुति पुरान बिख्याता॥ ४६०-१६
बिषय अलंपट सील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी।
लोभामरष हरष भय त्यागी॥

कोमल चित दीनन्ह पर दाया ।
मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी ।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन ।
सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयित्री ।
द्विजपदप्रीति धरम जनयित्री ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर ।
जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं ।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निंदा असतुति उभय सम ममता मम पदकंज । ४६०-२१से२६
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥ ४६१-१से४
ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ॥ ५०३-७, ८

संत उदय संतत सुखकारी ।
बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥ ५०४-४
संत बिटप सरिता गिरि धरनी ।
परहित हेतु सबन्हि कै करनी ॥
संत हृदय नवनीत समाना ।
कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना ।
निज परिताप द्रवइ नवनीता ।
परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ ५०७-६से८

उन्होंने दो विशिष्ट प्रकार के सन्तों का उल्लेख किया है।

सद्गुरु—

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते ॥ १-५, ६

बंदउँ गुरु पदकंज कृपासिन्धु नररूप हरि ।
महामोह तमपुंज जासु बचन रबिकर-निकर ॥

बंदउँ गुरुपद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।
समन सकल भवरुज परिवारू ॥
सुकृत संभुतन बिमल बिभूती ।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी ।
किये तिलकु गुन गन बस करनी ॥
श्री गुरुपद नख मनिगन जोती ।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती ॥
दलन मोहतम सो सुप्रकासू ।
बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के ।
मिटहिं दोस दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥

जथा सुअंजन आँजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन ।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन ॥ २-११से२३

संत कहहिं अस नीति प्रभु स्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिबेक उर गुरुसन किये दुराव ॥ २७-११,१२

गुरु के बचन प्रतीति न जेही ।
सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ॥ ४१-२०

राखइ गुरु जो कोप बिधाता ।
गुरु बिरोध नहिं कोउ जगत्राता ॥ ७६-१८

स्रीगुरु चरन सरोजरज निज मनु मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥ १७०-३,४

जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं ।
ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥ १७१-१

जे गुरुपद अंबुज अनुरागी ।
ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥ २७०-१७

भूमि जीव संकुल रहे गये सरद रितु पाइ ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥ ३३६-१३,१४

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥ ४८९-७

जे सठ गुरुसन इरषा करहीं ।
रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥

त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा।
अयुत जनम भरि पावहिं पीरा॥ ४१२-२५,२६*

परन्तु गुरु की प्रबल महिमा बताते हुए भी उन्हें मानना पड़ता है कि—

मूरुख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सिव॥ ३८०-२०

ब्राह्मण—

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना।
मोहजनित संसय सब हरना॥ ४-२
तप बल बिप्र सदा बरिआरा।
तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा।
तौ तव बस बिधि बिस्नु महेसा॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई।
सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥ ७१-५से७
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना।
मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥ १८-२२
मंगलमूल बिप्र परितोषू।
दहइ कोटिकुल भूसुर रोषू॥ २११-६
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही।
मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥

---

* वे उसे ही गुरु कहते हैं जो शिष्य का शोक हर सके अन्यथा वह गुरु कुगुरु या नारकी कहाने योग्य है।

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥ ४८८

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥

सापत ताड़त परुष कहंता।
बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिय बिप्र सील गुनहीना।
सूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना॥
कहि निज धर्म ताहि समुझावा।
निज पद प्रीति देखि मनभावा॥ ३१६-१६से२४
मसकदंस बीते हिम त्रासा।
जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा॥ ३३६-१२
छमासील जे पर उपकारी।
ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥ ४६४-११
सुनु मम बचन सत्य अति भाई।
हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना।
जानेसु संत अनंत समाना॥
इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला।
काल दंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्हकर मारा नहिं मरई।
बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥ ४६४-१७से२०
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। ४६६-२६।१

यद्यपि उनके विचार में भक्तिहीन ब्राह्मण की अपेक्षा भक्ति-युक्त शूद्र अच्छा है परन्तु फिर भी श्रद्धा की पुष्टि के लिये वे निकृष्ट ब्राह्मण और वेशधारी साधूबाबा लोगों तक को भी पूज्य

ही कह देते हैं, गो वे इतना जानते हैं कि जन्म-कर्म के इन बाहरी 'भेखों' के भुलावे में केवल मूर्ख लोग ही आ सकते हैं। नीचे की पंक्तियों का मिलान करके देखिये:—

लखि सुबेषु जग बंचक जेऊ।
बेष प्रताप पूजिअहि तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥
किएहु कुबेषु साधु सनमानू।
जिमि जग जामवंत हनुमानू॥ ७-९से७

तुलसी देखि सुबेखु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु बचन सुधासम असन अहि॥ ७७-१९,२०

लोक बेद सब भाँतिहि नीचा।
जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं॥
येहि तो राम लाइ उर लीन्हा।
कुल समेत जग पावन कीन्हा॥
करमनास जलु सुरसरि परई।
तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना।
बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ॥ २४९-१२से११

एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं।
बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥

जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥ २६४-१७से११

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन बलु परिजन गुन चतुराई ॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जलु बारिद देखिय जैसा ॥ ३२०-६से११

(इ) भक्त

(१) भक्त की महिमा—मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम तें अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि संत समीरा ॥ ५०३-३,४

(२) रामभक्तों के लक्षण—सिव पदकमल जिन्हहि रति नाहीं।
रामहिं ते सपनेहु न सुहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू।
राम भगत कर लच्छन एहू ॥ ४४-६,१०
जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥

सब कइ ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरषु सोकु भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥ ३६९-६ से ६

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥ ३६९-११,१२

बयरु व बिग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी।
अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई।
दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मदमोह। ४६३-२७
ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ ४६४-१ से ५

(३) उनकी नम्रता और प्रतीति—

प्रिया सोच परिहरहु सब सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहि सोइ करिहि कल्यान॥ ३८-१,२

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं।
तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥

सेवक हम स्वामी सियनाहू ।
होउ नात यह ओर निबाहू ॥ १७६-११, १२
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं ।
भगति बिरति न ग्यानु मन माहीं ॥
नहिं सतसंग जोगु जप जागा ।
नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ।
एक बानि करुनानिधान की ।
सो प्रिय जाके गति न आन की ॥ २०४-६ से ११
सहज बानि सेवक सुखदायक ।
कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता ।
होइहहिं निरखि स्याम मृदुगाता ॥
बचनु न आव नयन भरि बारी ।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥ ३२१-६ से ११
दीनदयालु बिरदु संभारी ।
हरहु नाथ मम संकट भारी ॥ ३२६-२०
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना ।
दीनबन्धु प्रनतारति हरना ॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी ।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ॥
अवगुन एक मोर मैं माना ।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा ।
निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरइ न पाव देह बिरहागी॥ ३५८-५ से १०
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं।
सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥
निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन करेउ। ४४२-१८,१६

(४) उनकी अनन्यता—

मन क्रम बचनु रामपद सेवक।
सपनेहु आन भरोस न देवक॥ ३०४-५
सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवकु सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ ३२६-१६,१७

(५) उनकी आसक्ति—

निंदहिं आपु सराहहिं मीना।
धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
जौं पै प्रियबियोगु बिधि कीन्हा।
तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा॥ २०३-१७,१८
सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं।
जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥ २२५-४
पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नाम जपु लोचन नीरू॥ २६५-२५
देखि इंदु चकोर समुदाई।
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥ ३३६-१७

रामराम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥ ४४२-२

जग जस भाजन चातक मीना ।
नेम प्रेम निज निपुन नवीना ॥ २६१-१

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ ।
जाचत जलु पबिपाहन डारउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई ।
बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे ।
तिमि प्रियतम पद नेम निबाहे ॥ २४४-१४से२१

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी ।
जौं सनमानहिं सेवक मानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीं ।
राम सुस्वामि दोष सब जनहीं ॥ २६०-२५,२६

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ ५१०-३, ४

(६) उनका त्याग—

कह नृप जे बिग्यान निधाना ।
तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
रहहिं अपनपौ सदा दुराये ।
सब बिधि कुसल कुबेष बनाये ॥
तेहिते कहहिं संत स्रुति टेरे ।
परम अकिंचन प्रिय हरि केरे ॥ ७७-६ से ११

प्रभु जानत सब बिनहि जनाये।
कहहु कवन सिधि लोक रिझाये॥ ७७-२२
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हहीं।
बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥ २०२-२६

सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु। २२४-१८

रमा बिलासु राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥ २६५-१२
बिनु घन निर्मल सोह अकासा।
हरिजन इव परिहरि सब आसा॥ ३३६-१

(७) उनका जगद्बन्धुत्व—

हेतुरहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥ ४६४-१०

उमा जे राम चरनरत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ ४१७-१४, १५

(८) उनकी शक्ति—

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू।
बड़ रखवार रमापति जासू॥ ६३-१६
मायापति सेवक सन माया।
करइ त उलटि परइ सुरराया॥ २५४-२०
गरल सुधा रिपु करइ मिताई।
गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥
गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥ ३४७-१४,१५

बचन काय मन मम गति जाही।
सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही॥ २९८-१५

तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला।
ताहि न व्याप त्रिबिध भवसूला॥ ३६४-२९

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि साप।
मुनि दुरलभ बर पायेउँ देखहु भजन प्रताप॥ ४११-१,२

इसीलिये उनकी सेवा परम अभीष्ट फलदायिनी है—

सीतापति सेवक सेवकाई।
कामधेनु सय सरिस सुहाई॥ २७१-४

उत्तरार्द्ध

सुकृतियों की भावनाएँ

अ—भक्तों की भावना

यों तो रामचरितमानस के सभी प्रधान पात्र (चाहे वे देव हों, चाहे मनुष्य, चाहे राक्षस) राम के भक्त बताये गये हैं और सभी ने अपनी भावनाएँ अच्छे ढंग से प्रकट की हैं, परन्तु सेव्य-सेवक भाववाली सच्ची भक्ति के लिए निम्नलिखित भावनाएँ तो विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं:—

(१) भक्त के मन में निर्गुण की अपेक्षा सगुण की ओर विशेष रति रहती है—

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू ।
बिधि हरि हर बंदित पदरेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक ।
प्रनतपाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू ।
तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥

जो सरूप बस सिवमन माहीं।
जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारतिमोचन॥ ७१-५ से १०

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता।
अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ।
फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥ २०७-३,४

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी।
एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
रामचरन बारिज जब देखउँ।
तब निज जनम सफल करि लेखउँ॥
जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई।
ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई।
सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई॥ ४६५-१७से२०

बिबिधि भाँति मुनि मोहि समुझावा।
निर्गुन मत मम हृदय न आवा॥ ४६६-६

(२) आराध्य को सुखी देखना ही भक्त की एकमात्र इच्छा रहती है—

डरु न मोहि जगु कहहि कि पोचू।
परलोकहु कर नाहिं न सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। { २४०-२७
मोहि लगि भे सियराम दुखारी॥ { २४१-१

सुनु मात मैं पायेउँ अखिल जगराज आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राममनामयं॥ ४२६-१६,२०

(३) जो वस्तु आराध्य के काम आई वह धन्य है और जो आराध्य के काम न आई वह व्यर्थ है—

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं।
तिन्हहिं नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहिं सुकृती केहि घरी बसाये।
धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं।
तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी।
तिन्हहिं सराहहिं सुरपुरबासी॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं।
सीता लषन सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं।
तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं॥
जेहि तरुवर प्रभु बैठहिं जाई।
करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा।
मानति भूमि भूरि निज भागा॥ २१४-५ से १२

जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू ।
कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना ।
रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥
ए महि परहिं डासि कुसपाता ।
सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुबर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा ।
धवल धामु रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥

जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार ।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किये करतार ॥

जौं ए कंदमूल फल खाहीं ।
बादि सुधादि असन जग माहीं ॥ २१६-१९से२१
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये ।
धन्य सो नगरु जहाँ तें आये ॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ ।
जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ ॥
सुखु पायेउ बिरंचि रचि तेही ।
ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
रामलषन पथि कथा सुहाई ।
रही सकल मग कानन छाई ॥ २१७-१८से२१
धन्य भूमि बन पंथु पहारा ।
जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम धारा ॥
धन्य बिहँग मृग काननचारी ।
सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी ॥

हम सब धन्य सहित परिवारा ।
दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥ २२२-२५से२७
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू ।
भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥ २४६-१४
जहँ सिंसपा पुनीत तरु रघुबर किये बिस्रामु ।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥
कुस साथरी निहारि सुहाई ।
कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई ।
बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥
कनक बिंदु दुइ चारिक देखे ।
राखे सीस सीय सम लेखे ॥ २४७-२से६
जहँ जहँ रामबास बिस्रामा ।
तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥ २५६-२
जे जन कहहिं कुसल हम देखे ।
ते प्रिय रामलषन सम लेखे ॥ २५७-५
हरषहिं निरखि रामपद अंका ।
मानहुँ पारसु पायेउ रंका ॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं ।
रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥ २६२-१३,१४
चरनपीठ करुनानिधान के ।
जनु जुग जामिक प्रजाप्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के ।
आखर जुग जनु जीव जतन के ॥

कुल कपाट कर कुसल करम के।
बिमल नयन सेवा सुधरम के॥ २१२-६ से ८

(४) आराध्य के दर्शन पाकर ही भक्त कृतार्थ हो जाते हैं। सान्निध्य बना रहा तब तो कहना ही क्या और यदि वह दर्शन-प्रद सान्निध्य अन्तकाल के समय भी बना रहे तब तो फिर उस आनन्द की बात ही न पूछिए—

मरनसील जिमि पाव पियूखा।
सुरतरु लहइ जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपद जैसे।
इन्हकर दरसन हमकहुँ तैसे॥ १५५-२४,२५

करहिं जोग जोगी जेहि लागी।
कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥
व्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी।
चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई।
जो तिहुँ काल एक रस अहई॥

नयन बिषय मोकहुँ भयउ सो समस्त सुखमूल।
सबुइ सुलभ जगजीव कहँ भयें ईसु अनुकूल॥ १२८-१४से१६

प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम॥२८२-१२,१३

निज परम प्रीतमु देखि लोचन सुफल करि सुखु पाइहउँ ।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहउँ ॥
निर्बानदायक क्रोध जाकर भगति अबसहिं बसकरी ।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ॥
मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान ।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मोसम आन ॥ ३१४-२२से२७

(५) यदि आराध्य के चरणकमल, वरदहस्त, प्रेमपूर्ण भाव आदि मिल गये तब तो फिर कृतकृत्यता ही हो गई समझिए—

जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं ।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ॥
जे परसि मुनि बनिता लही गति रही जो पातकमई ।
मकरंद जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मुनि मन जोगि जन जे सेइ अभिमत गति लहहिं ।
ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय जय सब कहहिं ॥१४८-१७से२२

हम सम पुन्य पुंज जग थोरें ।
जिन्हहि रामु जानत करि मोरें ॥ २७६-१०
प्रभु कर पंकज कपि कै सीसा ।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥ ३५८-२५
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता ।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी ।
दंडक कानन पावनकारी ॥
जे पद जनकसुता उर लाये ।
कपट कुरंग संग धर धाये ॥

हर उर सर सरोज पद जेई ।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ । ⎰ २६२-२८
ते पद आज बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥ ⎱ २६३-१से५

अहोभाग्य मम अमित अति रामकृपा सुख पुंज ।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज ॥ २६५-१,२

(६) वे भेदभक्ति के कारण अविनाशी जीव बना रहना ही पसन्द करते हैं ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा ।
रामकृपा बैकुंठ सिधारा ॥
तातें मुनि हरि लीन न भयऊ ।
प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥ ३०३-२१,२२
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं ।
तिन्ह कहँ रामु भगति निज देहीं ॥ ४३३-६
हरि सेवकहिं न ब्यापि अबिद्या ।
प्रभु प्रेरित ब्यापहि तेहि बिद्या ॥
तातें नास न होइ दासकर ।
भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर ॥ ४७८-६,७

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति ॥ ४८२-२२, २३

(७) भक्त लोग भक्ति के आनन्द के लिये ही भक्ति करते हैं । यदि वे भवभीर भंजन कराना चाहते हैं तो केवल इसीलिये कि अविद्या के विनाश के अनन्तर उन्हें भक्ति का निर्बाध आनन्द

मिलेगा। सन्तों से अथवा परमात्मा से वे इसके अतिरिक्त और कोई याचना ही नहीं करते।

संत सरलचित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु॥ ५-७,८

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। ७२-१६
सोइ बिबेकु सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥ ७३-१,२

बार बार मागउँ कर जोरे।
मनु परिहरइ चरन जनि भोरे॥ १५८-२४

सुफल सकल सुभ साधन साजू।
राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी।
तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू।
निज पद सरसिज सहज सनेहू॥ २११-२२से२४

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

जानहु राम कुटिल करि मोही।
लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही॥
सीताराम चरन रति मोरे।
अनु दिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥ २४६-१५से१८

अबिरल भगति बिरति सतसंगा।
चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥ ३०७-२

अब प्रभु कृपा करहु येहि भाँती ।
सब तजि भजन करउँ दिन राती ॥ ३३१-२१

जेहि जोनि जनमउँ करम बस तहँ रामपद अनुरागऊँ ॥ ३३३-६

नाथ भगति अति सुखदायिनी ।
देहु कृपा करि अनपायिनी ॥ ३५६-१०

स्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरतिहरन सरन सुखद रघुबीर ॥ ३६४-८,६

अब कृपाल निज भगति पावनी ।
देहु सदा संभु मनभावनी ॥ ३६५-११
कृपा बारिधर राम खरारी ।
पाहि पाहि प्रनतारति हारी ॥ ४०५-२२

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।
जनम जनम प्रभु पद कमल कबहुँ घटइ जनि नेहु ॥ ४६५-६,७

अबिरल भगति बिसुद्ध तव स्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भगत कलपतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥४८०-२१से२४
मोसम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भवभीर ॥ ५१०-१,२

आ—स्तुतिकुसुमाञ्जलियाँ

आराध्य और आराधक के स्वरूप और सम्बन्ध का बहुत कुछ स्पष्टीकरण गोस्वामीजी की लिखी हुई स्तुतियों में हो जाता है ।

भावुक भक्तों के पाठ के लिए भी वे बड़ी अच्छी वस्तुएँ हैं। देखिए:—

(१) देवगणकृत—

ब्रह्मा—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोर कर सावधान मतिधीर॥
जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गोद्विजहितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता॥
पालन सुरधरनी अद्भुतकरनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई॥
जय जय अबिनासी सब घटबासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा।
निसिबासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भवभयभंजन मुनिमनरंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरयूथा॥
सारद स्रुति सेषा रिषय असेषा जाकहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवहु सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुन्दर गुन मंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परमभयातुर नमत नाथपदकंजा॥८८-९से२२

जय राम सदा सुखधाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥

भववारन दारन सिंह प्रभो।
गुनसागर नागर नाथ बिभो॥
तन काम अनेक अनूप छवी।
गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कवी॥
जसु पावन रावन नाग महा।
खगनाथ जथा करि कोप गहा॥
जन रंजन भंजन सोक भयं।
गत क्रोध सदा प्रभु बोधमयं॥
अवतार उदार अपार गुनं।
महि भार बिभंजन ग्यानघनं॥
अज व्यापकमेकमनादि सदा।
करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस बिभूषन दूषनहा।
कृत भूप बिभीषन दीन रहा॥
गुन ग्यान निधान अमान अजं।
नित राम नमामि बिभुं बिरजं॥
भुज दण्ड प्रचंड प्रताप बलं।
खल बृन्द निकंद महा कुसलं॥
बिनु कारन दीनदयाल हितं।
छबि धाम नमामि रमा सहितं॥
भवतारन कारन काज परं।
मन संभव दारुन दोष हरं॥
सर चाप मनोहर त्रोन धरं।
जलजारुन लोचन भूप बरं॥

सुख मंदिर सुन्दर श्रीरमनं ।
मद मार मुधा ममता समनं ॥
अनवद्य अखंड न गोचर गो ।
सब रूप सदा सब होइ न सो ॥
इति बेद बदंति न दंतकथा ।
रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा ॥
कृतकृत्य बिभो सब बानर ये ।
निरखंत तवानन सादर जे ॥
धिग जीवन देव सरीर हरे ।
तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥
अब दीनदयाल दया करिये ।
मति मोरि बिभेद करी हरिये ॥
जेहितें बिपरीत क्रिया करिये ।
दुख सो सुख मानि सुखी चरिये ॥
खल - खंडन मंडन रम्य छमा ।
पद - पंकज सेवित संभु उमा ॥
नृपनायक दे बरदानमिदं ।
चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥

बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात ।
सोभा-सिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात ॥ ४३२-१से२४

शंकर—परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि ।
पुलकित तन गदगद गिरा बिनय करत त्रिपुरारि ॥

मामभिरक्षय रघुकुलनायक ।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥

मोह महा घनपटल प्रभंजन ।
संसय बिपिन अनल सुर रंजन ॥
सगुन अगुन गुन मंदिर सुन्दर ।
भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन ।
बसहु निरंतर जन मन कानन ॥
बिषय मनोरथ पुंज कंज बन ।
प्रबल तुषार उदार पार मन ॥
भवबारिधि मंदर पर मंदर ।
बारय तारय संसृति दुस्तर ॥
स्यामगात राजीव बिलोचन ।
दीनबंधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरंतर ।
बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥
मुनि रंजन महि मंडल मंडन । } ४३४-१६ से २१
तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥ } ४३५-१ से ३

बैनतेय सुनु संभु तब आये जहँ रघुबीर ।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥

जय राम रमारमनं समनं ।
भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो ।
सरनागत माँगत पाहि प्रभो ॥
दससीस बिनासन बीस भुजा ।
कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ॥

रजनीचर बृंद पतंग रहे ।
सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥
महि मंडल मंडन चारुतरं ।
धृतसायक चाप निषंगवरं ॥
मद मोह महा ममता रजनी ।
तमपुंज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किये ।
मृग लोग कुभोग सरेन हिये ॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे ।
बिषया बन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हये ।
भवदंघ्रि निरादर के फल ये ॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते ।
पदपंकज प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं ।
जिन्हके पदपंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवंत कथा जिन्हके ।
प्रिय संत अनंत सदा तिन्हके ॥
नहिं राग न लोभ न मान मदा ।
तिन्हके सम बैभव वा बिपदा ॥
एहि तें तव सेवक होत मुदा ।
मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिये ।
पद पंकज सेवत सुद्ध हिये ॥

सम मानि निरादर आदरही ।
सब संत सुखी बिचरंति मही ॥
मुनिमानस पंकज भृंग भजे ।
रघुबीर महारनधीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी ।
भव रोग महामद मान अरी ॥
गुनसीलकृपा परमायतनं ।
प्रनमामि निरंतर स्रीरमनं ॥
रघुनंदनिकंदय द्वन्द्वघनं ।
महिपाल बिलोकय दीनजनं ॥

बार बार बर माँगउँ हरषि देहु स्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥ { ४४१-१६ से २४, ४५०-१ से १८

इन्द्र अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस ।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुरईस ॥

जय राम सोभाधाम । दायक प्रनत बिस्राम ॥
धृतत्रोन बर सर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥
जय दूषनारि खरारि । मर्दन निसाचर धारि ॥
जय दुष्ट मारेउ नाथ । भये देव सकल सनाथ ॥
जय हरन धरनीभार । महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल । किये जातुधान बिहाल ॥
लंकेस अति बल गर्ब । किये बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध खग नर नाग । हठि पंथ सबके लाग ॥
पर द्रोह रत अतिदुष्ट । पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीनदयाल । राजीवनयन बिसाल ॥

मोहि रहा अति अभिमान । नहिं कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु-पदकंज । गत मानप्रद दुखपुंज ॥
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि स्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप । स्रीराम सगुन सरूप ॥
बैदेहि अनुज समेत । ममहृदय करहु निकेत ॥
मोहि जानिये निज दास । दे भगति रमानिवास ॥
दे भगति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं ।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं ॥

सुरबृंदरंजनद्वंद्वभंजनमनुजतनु अतुलितबलं । ⎧ ४३३-८ से २५
ब्रह्मादिसंकरसेव्यराम नमामि करुनाकोमलं ॥ ⎩ ४३४-१ से ४

<u>जयंत</u>—कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई ।
त्राहि त्राहि दयालु रघुराई ॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई ।
मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥
निजकृत करम जनित फल पायेउँ ।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयेउँ ॥ २१६-२२ से २५

देव—दीनबंधु दयालु रघुराया ।
देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी ।
निज अघ गयेउ कुमारग गामी ॥
तुम्ह सम रूप ब्रह्म अबिनासी ।
सदा एक रस सहज उदासी ॥

अकल अगुन अज अनघ अनामय ।
अजित अमोघ सक्ति करुनामय ॥
मीन कमठ सूकर नरहरी ।
बामन परसुराम बपुधरी ॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायेउ ।
नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायेउ ॥
यह खल मलिन सदा सुरद्रोही ।
काम लोभ मद रत अति कोही ॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा ।
यह हमरे मन बिसमय आवा ॥
हम देवता परम अधिकारी ।
स्वारथरत तव भगति बिसारी ॥
भव प्रवाह संतत हम परे ।
अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥ ४२१-१ १से२२

वेद—जय सगुन निर्गुनरूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार भार विभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संयुक्त सक्ति नमामहे ॥
तव बिसम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवसनिसि काल कर्म गुनन्हि भरे ॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे ॥
भव खेद छेदनदच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे ॥
जे ग्यानमान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सोइ स्मरामहे ॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी ।
नख निर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पदकंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे ॥
अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक परन सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुनजस नित गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मांगहीं ।
मन बचन करम बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥
सबके देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार । { ४४८-१६ से २६
अंतरधान भये पुनि गये ब्रह्मआगार ॥ { ४४९-१ से १८

(२) मुनिगणकृत—

परशुराम—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेमु अमात ॥

जय रघुबंस बनज बन भानू ।
गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी ।
जय मद मोह कोह भ्रमहारी ॥

बिमय सील करुना गुन सागर ।
जयति बचन रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा ।
जय सरीर छबि कोटि अनंगा ॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा ।
जय महेस - मन - मानस - हंसा ॥
अनुचित बचन कहेउँ अग्याता ।
छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू । { १२०-२१से२४
भृगुपति गये बनहिं तपहेतू ॥ { १२१-१से४

<u>अत्रि</u>—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ।
मुनिवर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥
नमामि भक्तवत्सलं । कृपालु शील कोमलं ॥
भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदम् ॥
निकाम श्याम सुन्दरं । भवाम्बुनाथ मन्दरम् ॥
प्रफुल्ल कञ्ज लोचनं । मदादि दोष मोचनम् ॥
प्रलम्ब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवम् ॥
निषङ्ग चाप सायकं । धरं त्रिलोकनायकम् ॥
दिनेश-वंश-मण्डनम् । महेश - चाप - खण्डनम् ॥
मुनीन्द्र सन्त रञ्जनम् । सुरारि वृन्द भञ्जनम् ॥
मनोज वैरि वन्दितं । अजादि देव सेवितम् ॥
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहम् ॥
नमामि इन्दिरापतिं । सुखाकरं सतांगतिम् ॥
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपति - प्रियानुजम् ॥

त्वदङ्घ्रिमूल ये नरा। भजन्ति हीन मत्सरा॥
पतन्ति नो भवार्णवे। वितर्क बीचि सङ्कुले॥
विविक्तवासिनस्सदा। भजन्ति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकाम्॥
त्वमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुम्॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलम्॥
भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभम्॥
स्वभक्त-कल्प-पादपं। समं सुसेव्यमन्वहम्॥
अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा-पतिम्॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥
पठन्ति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदम्॥
व्रजन्ति नात्र संशयः। त्वदीय भक्ति संयुताः॥

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि। २००-६से२६
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहु तजइ मति मोरि॥ २०१-१से१०

सुतीक्ष्ण—कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी।
अस्तुति करउँ कवनि बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी।
रबि सनमुख खद्योत अँजोरी॥
श्याम तामरस दाम शरीरं।
जटामुकुट परिधन मुनि-चीरं॥
पाणि चापशर कटि तूणीरं।
नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं॥
मोहविपिन घनदहन-कृशानुः।
संत सरोरुह कानन-भानुः॥

निशिचर करि वरूथ मृगराजः ।
त्रातु सदा नो भव खगबाजः ॥
अरुण नयन राजीव सुवेशं ।
सीता - नयन चकोर निशेशं ॥
हरहृदि मानस बाल मरालं ।
नौमि रामउर बाहु विशालं ॥
संशय सर्प्प ग्रसन उरगादः ।
शमन सुकर्कश तर्क विषादः ॥
भवभंजन रंजन सुरयूथः ।
त्रातु सदा नो कृपावरूथः ॥
निर्गुण सगुण विषम सम रूपं ।
ज्ञान गिरा गोतीतमरूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं ।
नौमि रामभंजन महिभारं ॥
भक्तकल्पपादप आरामः ।
तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥
अति नागर भवसागर सेतुः ।
त्रातुसदा दिनकर - कुल - केतुः ॥
अतुलित भुजप्रताप बलधामा ।
कलिमल विपुल विभंजन नामा ॥
धर्मवर्म नर्मद गुणग्रामः ।
संतत संतनोतु मम रामः ॥
यदपि बिरज ब्यापकु अबिनासी ।
सबके हृदय निरंतर बासी ॥

तदपि अनुज श्रीसहित खरारी ।
बसतु मनसि मम काननचारी ॥
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी ।
सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसलपति राजिवनयना ।
करउ सो रामु हृदय मम अयना ॥
अस अभिमान जाय जनि भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचनु राम मनु भाये ।
बहुरि हरषि मुनिबर उर लाये ॥ ३०९—३ से २७

सनकादि—जय भगवंत अनंत अनामय ।
अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुन जय जय गुनसागर ।
सुखमंदिर सुंदर अति नागर ॥
जय इंदिरारमन जय भूधर ।
अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥
ग्याननिधान अमान मानप्रद ।
पावन सुजस पुरान बेद बद ॥
तग्य कृतग्य अग्यताभंजन ।
नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्व सर्वगत सर्व उरालय ।
बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वंद बिपति भवफंद बिभंजय ।
हृदि बसि रामु काममद गंजय ॥

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेमभगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥
देहु भगति रघुपति अति पावनि ।
त्रिबिधताप भवदाप नसावनि ॥
प्रनत कामसुर धेनु कलपतरु ।
होइ प्रसन्न दीजइ प्रभु यह बरु ॥
भव बारिधि कुंभज रघुनायक ।
सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय ।
दीनबंधु समता बिसतारय ॥
भूप - मौलि - मनि - मंडन - धरनी ।
देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥
मुनि मन मानस हंस निरंतर ।
चरनकमल बंदित अज संकर ॥
रघुकुल - केतु सेतु स्रुतिरच्छक ।
काल कर्म सुभाव गुनभच्छक ॥
तारन तरन हरन सब दूषन ।
तुलसिदास प्रभु त्रिभुवनभूषन ॥
बार बार असतुति करि प्रेमसहित सिर नाइ ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥ ४२१-१से२१

नारद—तेहि अवसर मुनि नारद आये करतल बीन ।
गावन लागे रामकलकीरति सदा नबीन ॥
मामवलोकय पंकजलोचन ।
कृपाबिलोकनि सोचबिमोचन ॥

नील तामरस स्याम काम अरि ।
हृदयकंज मकरंद मधुप हरि ॥
जातुधान बरूथ बलभंजन ।
मुनिसज्जन रंजन अघगंजन ॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक ।
असरन सरन दीन जन गाहक ॥
भुजबल बिपुल भार महि खंडित ।
खरदूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनारि सुख - रूप भूपवर ।
जय दसरथ - कुल - कुमुद - सुधाकर ॥
सुजसु पुरान बिदित निगमागम ।
गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन ।
सब बिधि कुसल कोसलामंडन ॥
कलिमल मथन नाम ममताहन ।
तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनतजन ॥४६९-१७से२७

(२) अन्य जीवकृत—

कौशल्या—कह दुइकर जोरी अस्तुति तोरी केहिबिधि करउँ अनंता ।
मायागुनग्यानातीत अमाना बेदपुरान भनंता ॥
करुनासुखसागर सब गुनआगर जेहि गावहिं स्रुति संता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
ममउर सो बासी यहउपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै ।१९-७से१२

अहल्या—परसत पदपावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥
धीरज मनु कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यान गम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई।
राजीवबिलोचन भवभयमोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥
मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पदकमलपरागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिवसीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहिभाँतिसिधारी गौतमनारी बारबारहरिचरन परी। { ६६-१७से२२
जो अतिमनभावा सो बरुपावा गइ पतिलोकअनंदभरी॥ { १००-१से१०

मन्दोदरी—जानेउ मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं॥
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजनम तें पर द्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहूँ दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥४२८-६से६

जटायु—स्यामगात बिसाल भुजचारी।
अस्तुति करत नयन भरि बारी॥
जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दस सीस बाहु प्रचंड खंडन चंडसर मंडन मही॥

पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं ।
नित नौमि राम कृपालु बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥
बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।
गोबिंद गोपर द्वन्दहर बिज्ञानघन धरनीधरं ॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं ।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥
जेहि स्रुति निरंजन ब्रह्मव्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।
करि ध्यान ज्ञान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभावृंद अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
पश्यंति जे जोगी जतनु करि करत मन गो बस जदा ॥
सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

अबिरल भगति माँगि बर गीध गयेउ हरि धाम । ⎫ ३१८-२० से २८
तेहिकी क्रिया जथोचित निजकर कीन्ही राम ॥ ⎭ ३१९-१ से ११

भुशुंडि—सरन गये मोसे अघरासी ।
होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी ॥ ४७६-२०

(४) गोस्वामीजी कृत (मङ्गलाचरण)—

यन्मायावशवर्त्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ २-४ से ८

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथानमम्लौ वनवासदुःखतः
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्। { १६९-२,३
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥ { १७०-१,२

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथि गतं रामाभिरामं भजे ॥ २४८-२से८

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥ ३२७-१से४

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥ ३४४-१ से ६

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कुन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपं॥ ३७२-१ से७

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्य जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥
कोशलेन्द्रपदकंजमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥ ४७०-१से६

आराधना

गोस्वामीजी का हरिभक्ति-पथ समन्वय-मार्ग ही है, क्योंकि वह "संयुत विरति विवेक" है।

गोस्वामीजी अपना कोई अलग पंथ चलाना नहीं चाहते थे, परन्तु समन्वय-मार्ग का रहस्य भली भाँति प्रकट कर देना चाहते थे। इसीलिए नये पंथ-प्रवर्तकों को फटकारते हुए वे कहते हैं—

श्रुतिसम्मत हरिभक्ति-पथ संयुत बिरति विवेक।
तेहि परिहरहिं विमोह बस कल्पहिं पन्थ अनेक॥ ४८९-३,४

पूर्वार्ध

(१) विरति (कर्म-सिद्धान्त)

नियतिचक्र (जिसे विधिविधान, कर्मविपाक, भाग्य अथवा ईश की आज्ञा भी कहा जाता है) कितना प्रबल है, देखिए—

काल सुभाउ करम बरिआईं।
भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥ ७-२

हरि इच्छा भावी बलवाना।
हृदय बिचारत संभु सुजाना॥ ३१-२४

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनहार॥ ३६-२१,२२

अस बिचारि सोचहि मति माता।
सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौ बाउर नाहू।
तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका।
मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका॥ ४०-८ से १०

दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ॥ ९०-१२

भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान ॥ ६४-२

तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलइ सहाइ ।
आपु न आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लेइ जाइ ॥ ७६-२१,२२

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम ।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम ॥ ८३-११,१२

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू ।
बिधिगति बाम सदा सब काहू ॥ १६१-१०

सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं ।
रामु चराचर नायकु अहहीं ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी ।
ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करइ जो करमु पाव फलु सोई ।
निगम नीति असि कह सबु कोई ॥
और करइ अपराध कोउ और पाव फलु भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु ॥ २००-९ से ६

सिय रघुबीर कि कानन जोगू ।
करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥ २०९-१८

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता ।
निजकृत करम भोगु सबु भ्राता ॥ २०९-२४

सहित बिषाद परसपर कहहीं ।
बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू ।
जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥

रूखु कलपतरु सागरु खारा ।
तेहिं पठये बन राजकुमारा ॥ २१६-१२ से १४
जनि मानहु हिय हानि गलानी ।
काल करम गति अघटित जानी ॥ २३४-६
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥
अस बिचारि केहि देइय दोषू ।
ब्यरथ काहि पर कीजिय रोषू ॥ २३६-२१ से २३
सुख सरूप रघुबंसमनि मंगलमोद निधान ।
ते सोवत कुसडासि महि बिधिगति अति बलवान ॥ २४७-२२,२३
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी ।
काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥ २६४-२७
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइय दोषु ॥ २६५-२
जनम हेतु सब कहँ पितु-माता ।
करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥ २६६-४
तात जाय जिय करहु गलानी ।
ईस अधीन जीव गति जानी ॥ २७२-४
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी ।
जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥
सुनिय सुधा देखियहि गरल सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सुकृत मराल ॥
सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा ।
बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥

जो सृजि पालइ हरइ बहोरी ।
बालकेलि सम बिधि मति भोरी ।।
कौसल्या कह दोषु न काहू ।
करम बिबस दुखु सुखु छति लाहू ।।
कठिन करमगति जान बिधाता ।
जो सुभ असुभ सकल फलदाता ।।
ईस रजाइ सीस सबही कें ।
उतपति थिति लय बिषहु अमी कें ।।
देबि मोहबस सोचिय बादी ।
बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ।। २७६-३ से ११
नट मरकट इव सबहिं नचावत ।
रामु खगेस बेद अस गावत ।। ३३१-२४
उमा दारु जोसित की नाईं ।
सबहिं नचावत रामु गोसाईं ।। ३३३-२७
प्रभु अग्याँ अपेल स्तुति गाई ।
करउँ सो बेगि जो तुम्हहिं सुहाई ।। ३६६-२६
अहह कंत कृत राम बिरोधा ।
काल बिबस मन उपज न बोधा ।।
कालु दंड गहि काहु न मारा ।
हरइ धरम बल बुद्धि बिचारा ।।
निकट काल जेहि आवइ साईं ।
तेहि भ्रम होहि तुम्हारिहि नाईं ।। ३९१-१ से ६
अग जग जीव नाग नर देवा ।
नाथ सकल जग काल कलेवा ।।

अंड कटाह अमित लयकारी ।
कालु सदा दुरतिक्रम भारी ॥ ४८९-२१,२२

इसलिए सकाम कर्मों में यदि असफलता मिली तो दुःखित होना हमारी ही मूर्खता है--

जनम मरन सब दुख सुख भोगा ।
हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं ।
बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं ।
दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥ २२८-७से९
प्रभु आयेसु जेहि कहँ जस अहई ।
सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥ ३६६-२२

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भाग्याधीन होकर सब कर्मों का ही बहिष्कार कर दिया जाय—

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा ।
हृदय राखि कोसलपुर राजा ॥ ३४७-१३
नाथ दैव कर कवन भरोसा ।
सोखिय सिंधु करिय मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा ।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥ ३६६-१२,१३

असल बहिष्कार तो कर्मों का नहीं, वरं कर्मफल कामना का होना चाहिए। इस कामना से प्रेरित होनेवाले शुभाशुभदायक कर्म (सकाम कर्म) अवश्य त्यागने योग्य हैं ; क्योंकि इन्हीं के कारण सुख-दुःख का चक्कर मिलता है—

कहिय तात सो परम बिरागी ।
तिनु सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥ ३०८-१

अस बिचारि जे परम सयाने ।
भजहिं मोहिं संसृत दुख जाने ॥
त्यागहिं करम सुभासुभदायक ।
भजहिं मोहिं सुर नर मुनिनायक ॥ ४६२-३,४

ये कर्म स्वरूप ज्ञान पर आप ही आप छूट जाते हैं।

कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें । ४९६-$\frac{२५}{२}$

व्यवहार में नियति परतंत्र रहते हुए भी स्वरूप ज्ञान के लिए मनुष्य पूर्ण स्वतंत्र है, इसलिए जो स्वरूप ज्ञान द्वारा कल्याण-साधन नहीं करता वह भी निहंता है। वह नियति-चक्र को व्यर्थ ही दोष देता रहता है—

बड़े भाग मानुस तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि-धुनि पछिताइ ।
कालहि करमहि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥

एहि तन कर फल विषय न भाई ।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नर तनु पाइ बिषय मनु देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥

ताहि कबहुँ भलु कहहि न कोई। } ४६२-२४,२५
गुंजा गहइ परसमनि खोई॥ } ४६३-१ से ५

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो।
सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा।
दुरलभ साजु सुलभ करि पावा॥
जो न तरइ भवसागर नर-समाजु अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन गति जाइ॥ ४६३-८ से १२

भक्ति के विना कल्याण-साधन पूर्ण नहीं होता, क्योंकि भक्ति ही से भगवत्प्रकाश स्पष्ट होता है अथवा यों कहिए कि स्वरूप-ज्ञान होता है, जिसके कारण माया का बन्धन (नियति-चक्र) फिर अक्लेशकर बन जाता है—

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू।
गहहिं न पाप-पुन्य गुन-दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा।
भगत अभगत हृदय अनुसारा॥ २५५-३ से ५
काल धरमु नहिं ब्यापहिं ताही।
रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥

नटकृत बिकट कपट खगराया ।
नटसेवकहिं न ब्यापइ माया ॥
हरिमायाकृत दोष गुनु बिनु हरिभजन न जाहिं ।
भजिय राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥४११-९से१२

काल करमु गुन दोष सुभाऊ ।
कछु दुख तुम्हहिं न ब्यापिहि काऊ ॥ ४१८-१०

विरति के सिद्धांत का इस प्रकार विवेचन करते हुए गोस्वामीजी उसके साधनों (विविध नीतियों) की भी चर्चा करते हैं। विरति का आधार है धर्म (देखिए "धर्म ते विरति" ३०८-४,१) और धर्मतत्त्व समझने के लिए नीतियाँ जानना जरूरी है। सो गोस्वामीजी के नीति-वाक्य इस प्रकार हैं—

सामान्य नीति

पुरुष की परख—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु ॥१२६-१९,२०
कसे कनकु मनि पारिखि पायें ।
पुरुष परिखियहिं समय सुभायें ॥ २७९-२१
जनि जलपना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा ।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा ॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं ।
एक कहहिं,कहहिं करहिं अपर,एक करहिं कहत न बागहीं॥४१८-१७से२०
महापुरुष—निज कबित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होउ अथवा अति फीका ॥

जे परभनिति सुनत हरषाहीं ।
ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सरिसर सम भाई ।
जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सुकृतसिंधु सम कोई ।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥ ८-७ से १०
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं ।
गिरि निज सिरन्ह सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू ।
संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥ ८०-२,३
जिन्हके लहहिं न रिपु रन पीठी ।
नहिं लावहिं परतिय मन डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्हकै नाहीं ।
ते नरबर थोरे जग माहीं ॥ १०८-१७,१८
बोली चतुर सखी मृदुबानी ।
तेजवंत लघु गनिय न रानी ॥
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा ।
सोखेउ सुजस सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा ।
उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥ ११६-१ से ३
मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब ।
महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्ब ॥
काम कुसुम धनुसायक लीन्हें ।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें ॥ ११६-२,५

संभावित कहुँ अपजस लाहू ।
मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥ २०७-३

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं ।
ऐसे नरनिकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे ।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥ ३७७-५,६

पर उपदेस कुसल बहुतेरे ।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥ ४१०-२०

हीनजन—जिमि चह कुसल अकारन कोही ।
सब संपदा चहइ सिवद्रोही ॥
लोभी लोलुप कीरति चहई ।
अकलंकता कि कामी लहई ॥
हरिपदबिमुख परम गति चाहा ।
तस तुम्हार लालच नरनाहा ॥ ११२-१८,१७

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा ।
सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥ २४४-२४

सेवकु सुखु चह मानु भिखारी ।
ब्यसनी धनु सुभगति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुनानी ।
नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥ ३०६-५,६

नवनि नीच कै अति दुखदाई ।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥ ३१३-२७

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥३६३-१५,१६

सठसन बिनय कुटिलसन प्रीती ।
सहज कृपिन सन सुंदर नीती ॥
ममतारत सन ग्यान कहानी ।
अति लोभीसन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरिकथा ।
ऊसर बीज बये फल जथा ॥ ३६६-१०से१२

काटेहि पइ कदरी फरइ कोटि जतनु कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु डाँटेहि पै नव नीच ॥ ३६६-१७,१८

जरहिं पतंग बिमोहबस भार बहहिं खरबृंद ।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद ॥ ३८६-२१,२२

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा ।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी ।
बिस्नु बिमुख स्रुति संतबिरोधी ॥
तनुपोषक निंदक अघखानी ।
जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥ ३८७-८से१०

मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥ ४११-२६

वैर-प्रीति—जल पय सरिस बिकाय देखहु प्रीति कि रीति भल ।
बिलग होइ रस जाइ कपटखटाई परत पुनि ॥ ३२-१३,१४

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा ।
जाइअ बिनु बोलेहु न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई ।
तहाँ गये कल्यान न होई ॥ ३४-८,९

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥ १२०-६

लखब सनेहु सुभाय सुहाये ।
बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराये ॥ २४४-२८

तात कुतरक करहु जनि जायें ।
बैरु प्रेमु नहिं दुरइ दुरायें ॥

मुनि गुनि निकट बिहँग मृग जाहीं ।
बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥

हित अनहित पसु पंछिउ जाना ।
मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥ २७२-११से१३

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी ।
तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥

निज दुख गिरि सम रज करि जाना ।
मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥

जिन्हके अस मति सहज न आई ।
ते सठ कत हठि करत मिताई ॥ ३३१-१से३

आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥

जाकर चित अहिगति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ॥ ३३१-७से६

सुर नर मुनि सबकै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥ ३३३-२७

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई ।
तेहि पर ममता कर सब कोई ॥
पन्नगारि अस नीति स्रुति संमत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति करिय जानि निज परम हित ॥
पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ ४८६-१०से१४

अवसर की बात—तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा ।
मुये करइ का सुधा तड़ागा ॥
का बरषा जब कृषी सुखाने ।
समय चुके पुनि का पछिताने ॥ १२०-२२,२३
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू ।
आरत काह न करइ कुकरमू ॥ २४६-१३
सकुचउँ तात कहत एक बाता ।
अरध तजहिं बुध सरबसु जाता ॥ २६६-१०
आरत कहहिं बिचारि न काऊ ।
सूझ जुआरिहि आपन दाँऊ ॥ २७०-३
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू ।
रहत न आरत कें चित चेतू ॥ २७४-१०
सुनु प्रभु बहुत अवग्या किये ।
उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिये ॥
अति संघरषन जौं कर कोई ।
अनल प्रगट चंदन तें होई ॥ ४६६-१७,१८

सामान्य नियम—गुनहु लषनकर हम पर रोषू ।
कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू ॥

टेढ़ जानि बंदइ सब काहू ।
बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू ॥ १२६-१३,१४
दुइ कि होइ एक समय भुआला ।
हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई ।
होइ कि षेम कुसल रउताई ॥ १८३-२२,२३
हठबस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥ १६३-२४
सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि ॥ १६४-१७,१८
तब मारीच हृदय अनुमाना ।
नवहिं बिरोधे नहिं कल्याना ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी ।
बैद्य बंदि कबि मानस गुनी ॥ २१४-१६,१७
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं ।
मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥ २२७-१४
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी ।
मैं पामर पसु कपि अति कामी ॥ २२८-२१
सुमति कुमति सबके उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगमु अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥ ३६२-७,८
पावन जस कि पुन्य बिनु होई ।
बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥ ४३७-२
अघ कि पिसुनता सम कछु आना ॥ ४३७-५,

गार्हस्थ्य नीति

माता-पिता की आज्ञा—

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी।
बिनहिं बिचार करिय सुभ जानी॥ ४०-७

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥ १८६-४,५

धन्य जनमु जगतीतल तासू।
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥

चारि पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥ १८७-२१,२२

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका।
पितु आयसु सब धरम क टीका॥ १९१-१६

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय॥ १९७-६,१०

परसुराम पितु अग्या राखी।
मारी मातु लोग सब साखी॥

तनय जजातिहि जौबन दयऊ।
पितु अग्या अघ अजसु न भयऊ॥

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥ २२७-२३से२६

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी ।
सुनि मन मुदित करिय भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू ।
धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥ २३९-१,२
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें ।
चलेहु कुमग पग परहि न खालें ॥ २६१-२१

पूज्य पितर लोग प्राणों के समान हैं, परन्तु राम तो प्राणों के भी प्राण हैं। इसलिए पितरों की आज्ञा वहीं तक मान्य है, जहाँ तक वह रामभक्ति में सहायक हो—

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं ।
सेइअहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवनु जी के ।
स्वारथरहित सखा सबही के ॥ १६८-२०,२१

अरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥२४२-६,७

बन्धु का महत्व—होहिं कुठाँयँ सुबन्धु सहाये ।
ओड़ियहिं हाथ असनि के घाये ॥ २८८-१३

बालकों पर दया—बररै बालक एक सुभाऊ ।
इन्हहिं न बिदुष बिदूषहिं काऊ ॥ १२८-१५

सुपुत्र-कुपुत्र—पुत्रवती जुवती जग सोई ।
रघुपतिभगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । } १६८-२६
रामबिमुख सुत तें हित हानी ॥ } १६९-१

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।

जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं ॥ ३३९-१६,१७

सद्गृहस्थ—लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि ।

गृही बिरतिरत हरष जस बिस्नुभगत कहुँ देखि ॥ ३३४-१८,१९

विपन्नगृहस्थ—जल संकोच बिकल भइ मीना ।

अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना ॥ ३३९-२७

जाति-अपमान—जद्यपि जग दारुन दुख नाना ।

सबतें कठिन जाति-अपमाना ॥ ३४-२०

नारी का धर्म—करेहु सदा संकर पद पूजा ।

नारि धरम पतिदेव न दूजा ॥ ४३-३

होयहु सन्तत पियहि पियारी ।

चिर अहिबातु असीस हमारी ॥

सासु ससुर गुरु सेवा करेहू ।

पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥

अति सनेहबस सखी सयानी ।

नारिधरमु सिखवहिं मृदु बानी ॥ १९९-१३से १९

एहितें अधिक धरमु नहिं दूजा ।

सादर सासु ससुर पद पूजा ॥ १३३-१३

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं ।

पिय बियोग सम दुख जग नाहीं ॥ १३४-२९

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई ।

प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥

सासु ससुर गुरु सजन सहाई ।

सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू।
पतिबिहीन सब सोकसमाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू।
जमजातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मोकहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी।
तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥ १६५-१से७

आरजसुत पदकमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥२०७-२६

कह रिषिबधू सरस मृदु बानी।
नारिधरमु कछु ब्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सबु सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्त्ता बैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरजु धरम मित्र अरु नारी।
आपद काल परखियहि चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना।
अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना।
नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

एकइ धरम एकु ब्रतु नेमा।
काय बचन मन पतिपद-प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं।
बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरमु बिचारि समुझि कुल रहई।
सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पतिबंचक परपति रति करई।
रौरव नरक कलप सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई।
पतिब्रत धरम छाँड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई।
बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ।
जसु गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं। } ३०१-१४से२८
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा संसारहित॥ } ३०२-१से९

गोस्वामीजी ने पूर्वपरम्परानुसार नारी को काम का उपकरण बताया है और उसके स्वभाव के श्यामपक्ष को बहुत जोरदार शब्दों में चित्रित किया है—

कीन्ह कपट मैं संभुसन नारि सहज जड़ अग्य ॥३२-१२

सुरपति बसइ बाहुबल जाके ।
नरपति सकल रहहिं रुख ताके ॥
सो सुनि तिय रिसि गयउ सुखाई ।
देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे ।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥१७९-१८से२०
जद्यपि नीतिनिपुन नरनाहू ।
नारिचरित जलनिधि अवगाहू ॥१८०-२१
सत्य कहहिं कबि नारि-सुभाऊ ।
सब बिधि अगम अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई ।
जानि न जाय नारिगति भाई ॥

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥१८८-९से१२

बिधिहु न नारिहृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुन-खानी ॥२३३-३
स्रक चंदन बनितादिक भोगा ।
देखि हरष बिसमयबस लोगा ॥२४३-२१
भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।
पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥

होइ बिकल सक मनहिं न रोकी।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी ॥ २०८-२२,२३

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं ।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥ २२१-१२,१६

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्हमहँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥

सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता ।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेमु जलासय झारी ।
होइ ग्रीसम सोखइ सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका ।
इनहिं हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई ।
तिन्हकहुँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा ।
होइ हिम तिन्हहिं देति दुखु मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई ।
पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी ।
नारि निबिड रजनी अँधियारी ॥
बुधि बलु सील सत्य सब मीना ।
बनसी सम तिय कहहिं प्रबीना ॥

अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुखखानि। ३२४-१५ से २५

दीपसिखा सम जुवति तनु मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि कामु मदु करहि सदा सतसंग॥ ३२५-२५,२६

सभय सुभाव नारि कर साँचा।
मंगलमहुँ भय मन अति काँचा॥
नारि-सुभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अबिबेक असौच अदाया॥

उन्होंने उसकी स्वतंत्रता को पसन्द नहीं किया है—

महाबृष्टि चलि फूटि कियारी।
जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी॥ ३३५-१०
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥ ३६६-२४

परन्तु उनका कवि-हृदय उसकी पराधीनता के कारण दुःखित भी होता है—

कत बिधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥ ५३-५

वे सच्ची सती के विषय में लिखते हैं—

डगइ न संभु सरासन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे॥ ११६-८

और नारी-सम्मान की रक्षा के लिए घोषणा करते हैं—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी।
सुन सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदिष्ट बिलोकइ जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥ ३३२-२१,२२

राजनीति

राजमद—

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥ ३३-१८

× × ×

जग बौराइ राजपद पाये॥
ससि गुरुतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुरजान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। २५८-२४से२६
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥ २५९-१
कही तात तुम्ह नीति सुहाई।
सबतें कठिन राजमद भाई॥
जो अँचवत मातहिं नृप तेई। २५९-२६
नाहिंन साधु सभा जेहि सेई॥ २६०-१

निर्वाचनपरम्परा—

प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू।
रामहिं राय देहु जुबराजू॥
जौ पाँचहिं मत लागइ नीका।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥ १७२-१,२

बेद - बिहित संमत सबही का।
जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥ २११-४

लोक बेद संमत सब कहई।
जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥ २५०-१३

राजा कैसा हो—

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती।
बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर।
पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥
सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी।
नृपहि सराहत सब नर-नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला।
ईस अंस भव परम कृपाला ॥
सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी।
भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ।
× × × × ॥ १८-१०से१४

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ।
नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥ ४६-३

गुरु सुर संत पितर महिदेवा।
करइ सदा नृप सबकै सेवा ॥ ७४-२२

दिनप्रति देइ बिबिध बिधि दाना।
सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना ॥ ७४-२५

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरकअधिकारी ॥ १७१-१६

मुनि तापस जिन्हतें दुखु लहहीं।
ते नरेस बिनु पावकु दहहीं ॥ २१६-२

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू।
चाहिय धरमसील नरनाहू ॥ २२६-१६

सोइ गोसाइँ बिधिगति जेहि छेंकी।
सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥ २६६-६

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं।
अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥ २८०-१०

सेवक कर पद नयन से मुखु सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥ २८८-१४,१५

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।
पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥

राजधरम सरबसु एतनोई। ⎫ २६१-२४
जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥ ⎭ २६२-१से३

संत कहहिं असि नीति दसानन।
चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥
तासु भजन कीजिय तहँ भरता।
जो करता पालक संहरता ॥ ३७६-५,६

राजपुरुष कैसे हों—

परिजन प्रजउ चहिय जसराजा ॥ २६७-६,२

नीति और सन्मंत्र—

राजु नीति बिनु, धन बिनु धर्मा ।
हरिहि समर्पें बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाये ।
स्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥
संग तें जती कुमंत्र तें राजा ।
मान तें ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी ।
नासहिं बेग नीति अस सुनी ॥ ३१२-१६से१६

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ३६६-८

साम दान अरु दंड बिभेदा ।
नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीतिधरम के चरन सुहाये ।
अस जिय जानि नाथ पहिं आये ॥

धर्महीन प्रभुपद बिमुख कालबिबस दससीस ।
तेहि परिहरि गुन आये सुनहु कोसलाधीस ॥ ३६१-१४से१७

राजु कि रहइ नीति बिनु जाने ॥ ४६७-१,१०

दमन-व्यवस्था—

रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु ।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥ ८१-११,१२

रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥२५६-२,२

रन चढ़ि करिय कपट चतुराई।
रिपु पर कृपा परम कदराई ॥२१०-११

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि ॥ ३१२-२०

नाथ बयरु कीजिय ताही सों।
बुधि बल सकिय जीति जाही सों ॥३७९-२१

प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥३८३-२४,२५

शासन का आदर्श—

पुर नर नारि सुभग सुचि संता।
धरमसील ग्यानी गुनवंता ॥१०१-८

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी।
माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू।
पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥ २१०-२६,२७

रामबास बन संपति भ्राजा।
सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू।
बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी।
सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ।
रामचरन आश्रित चित चाऊ ॥

जीति मोह महिपाल दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राज्य पुर सुख संपदा सुकालु ॥२६१-१३से१८

अलिगन गावत नाचत मोरा ।
जनु सुराज मंगल चहु ओरा ॥ २६१-२५
अर्क जवास पात बिनु भयऊ ।
जस सुराजु खल उद्यम गयऊ ॥ ३३५-६
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा ।
प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥ ३३५-१४
पंक न रेनु सोह असि धरनी ।
नीतिनिपुन नृप कै जसि करनी ॥ ३३५-३६
राम राज बैठे त्रयलोका ।
हरषित भये गये सब सोका ॥
बयरु न कर काहूसन कोई ।
रामप्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधरम निरत स्रुति नीती ॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं ।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
रामभगतिरत नर अरु नारी ।
सकल परम गति के अधिकारी ॥

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥
सब निर्दंभ धरमरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥
रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल करम सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥४४३-११से२४
सब उदार सब परउपकारी।
बिप्रचरनसेवक नर - नारी॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी।
ते मन बच क्रम पतिहितकारी॥
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य-समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस रामचन्द्र के राज॥
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।
रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा।
अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा।
गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

लता विटप माँगे मधु चवहीं।
मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससिसंपन्न सदा रह धरनी।
त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनिखानी।
जगदातमा भूप जग जाना॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वादु सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं।
डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा।
अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥
बिधुमहि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज॥४२४-४से२०
जब तें रामप्रताप खगेसा।
उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका।
बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका॥
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी।
प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने।
काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
त्रिबिध करम गुन काल सुभाऊ।
ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥

मत्सर मान मोह मद चोरा।
इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना।
ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका।
बिगत सोक ए कोक अनेका॥
यह प्रताप रबि जाके उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥ ४२८-३से१२*

धर्मनीति—

धर्मनीति के अधिकारी—

नरबर धीर धरम धुर धारी।
निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥१२७-२२
धरम नीति उपदेसिअ ताही।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥११८-२

धर्म का महँगापन—

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहु बरु बचन न जाई॥१८१-२

---

* शासन-व्यवस्था का बहुत सुन्दर विवेचन बहुत दूर तक लिखा गया है। पाठक वह पूरा प्रसंग रामचरितमानस ही में देखने की कृपा करें। इस प्रसंग का उल्लेख गरुड़ और भुशुण्डि के संवाद की निम्नलिखित पंक्ति में है—

कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृपनीति अनेका॥४७३-८

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाखा ।
तनु धनु तजेउ बचनु पनु राखा ॥१८२-१

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा ।
सहे धरमहित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना ।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥२०६-२५,२६

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती ।
निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती ॥४०७-५

धर्मसील की सुख-सम्पत्ति—

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई ।
पुन्य पुरुष कहँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाये ।
धरमसील पहिं जाहिं सुभाये ॥ १३४-१३से१५

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥३२२-२१,२२

जानि सरद रितु खंजन आये ।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥ ३२५-२५

युगधर्म—

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजे ।
द्वापर परितोषन प्रभु पूजे ॥

कलि केवल मल मूल मलीना ।
पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम काम तरु काल कराला ।
सुमिरत समन सकल जगजाला ॥१७-२१से२३
पीपर तरु तर ध्यान जो धरई ।
जाप जग्य पाकरि तर करई ॥
आँब छाँह कर मानस पूजा ।
तजि हरिभजनु काजु नहिं दूजा ॥
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा ।
आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ॥४६८-१,२से१४

कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरिनाम तें पावहिं लोग ॥

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी ।
करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
त्रेता बिबिध जग्य नर करहीं ।
प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति-पदपूजा ।
नर भव तरहिं उपाउ न दूजा ॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा ।
गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना ।
एक अधार रामगुनगाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहिं ।
प्रेम समेत गाव गुनग्रामहिं ॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं।
नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुन्य होइ नहिं पापा॥

कलिजुगसम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुनगन विमल भव तर बिनहिं प्रयास॥४१०-११से२०

नित जुगधर्म होहिं सब केरे।
हृदय राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कछु रति करमा।
सब बिधि सुख त्रेता कर धरमा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस।
द्वापर धरमु हरषु भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा।
कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धरमु जानि मन माहीं।
तजि अधरम रति धरम कराहीं॥ ४११-३से८

कलि के अधर्म—

देखियत चक्रवाक खग नाहीं।
कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥३३९-१२

कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भये सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कलपि करि प्रगट किये बहु पंथ॥

भये लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्याननिधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥

बरन धरम नहिं आस्रम चारी।
स्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज स्रुतिबेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जाकहुँ जोइ भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभरत जोई।
ताकहुँ संत कहहिं सब कोई॥
सोइ सयान जो परधनहारी।
जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो स्रुतिपथ त्यागी।
कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाके नख अरु जटा बिसाला।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

असुभ भेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजित कलिजुग माहिं॥
जे उपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नर मरकट की नाईं॥

सूद्र द्विजन उपदेसहिं ग्याना।
मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम लोभरत क्रोधी।
देव बिप्र स्रुति संत बिरोधी॥
गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी।
भजहिं नारि परपुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना।
बिधवन्ह के सृंगार नबीना॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥
मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं।
उदर भरइ सोइ धरमु सिखावहिं॥

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि मोहबस करहिं बिप्र गुरु घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्हतें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाँटि॥

परतिय लंपट कपट सयाने।
मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर।
देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥
आपु गये अरु तिन्हहूँ घालहिं।
जे कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं॥
कलप-कलप भरि एक-एक नरका।
परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा।
स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई घर संपति नासी।
मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं।
उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा।
जाइ न बरनि अनीति अपारा॥
भये बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भये रुज सोक बियोग॥
स्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोहबस कलपहिं पंथ अनेक॥
बहु दाम सँवारहिं धाम जती।
बिषया हरि लीन्हि रही बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही॥
कुलवंति निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं।
अबलानन दीख नहीं जबलौं॥

ससुरारि पियारि लगी जब तें।
रिपुरूप कुटुम्ब भये तब तें॥
नृप पापपरायन धर्म नहीं।
करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी।
द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहिं जो।
हरिसेवक संत सही कलि सो॥
कबिबृन्द उदार दुनी न सुनी।
गुनदूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिंबार दुकाल परै।
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धरमु करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनि पर बये न जामहिं धान॥

अबला कच भूषन भूरि छुधा।
धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता।
मति थोरि कठोरि न कोमलता॥
नर पीड़ित रोगु न भोगु कहीं।
अभिमान बिरोध अकारन हीं॥
लघु जीवन संवतु पंचदसा।
कलपांत न नास गुमान असा॥

कलिकाल बिहाल किये मनुजा ।
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता ।
सब जाति कुजाति भये मँगता ॥
इरिषा परुखाच्छर लोलुपता ।
भरि पूरि रही समता बिगता ॥
सब लोग बियोग बिसोक हये ।
बरनास्रम धर्म अचार गये ॥
दम दान दया नहिं जानपनी ।
जड़ता परबंचनताति घनी ॥
तनुपोषक नारि नरा सगरे ।
परनिंदक जे जगमों बगरे ॥

सुनु ब्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार ।
गुनहु बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ॥

४८७-१३से२४
४८८-१से२४
४८६-१से२०
४६०-१से१०

धर्मरथ—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना ।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे ।
छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना ।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा।
यहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके॥४१२-६से१३

विविध धर्म—

(१) तप, यज्ञ, दान—

मातु पितहि पुनि यह मत भावा।
तप सुखप्रद दुख दोष नसावा॥
तप बल रचइ प्रपंच बिधाता।
तप बल बिस्नु सकल जग त्राता॥
तप बल संभु करहिं संहारा।
तप बल सेष धरइ महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तप अस जिय जानी॥३८-१४से१७

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥ ७७-१८

जनि आचरजु करहु मन माहीं।
सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल तें जग सृजइ बिधाता।
तप बल बिस्नु भये परित्राता॥

तप बल संभु करहिं संहारा।
तप तें अगम न कछु संसारा ॥७८-७से६
तुरत गयेउँ गिरिवर कंदरा।
करउँ अजय मख अस मन धरा ॥४०८-२२
मेघनाद मख करइ अपावन।
खल मायावी देव सतावन ॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि।
नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ।४०१-२,३
इहाँ दसानन जागि करि करइ लाग कछु जग्य ॥४१९-१
नाथ करइ रावनु एक जागा।
सिद्ध भये नहिं मरिहि अभागा ॥४१९-४
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।
जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥४८३-१६
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ॥४८१-१,२

(२) जप और अर्चा—

चहु जुग चहु स्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥१६-३
द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ॥७०-७,८
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ।
फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ ॥ ८०-१२
मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब ।११३-४

बिप्र जेंवाइ देहिं दिन दाना।
सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥ २३१-७
मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता।
तसि पूजा चाहिय जस देवता॥ २५२-२७
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥ ३७४-६

(३) सत्य और अहिंसा—

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये।
बेद पुरान बिदित मुनि गाये॥ १८१-३,४
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी।
सत्यसंध कहँ तृन सम बरनी॥ १८३-२५
धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना॥ २०७-१
धरम कि दया सरिस हरिजाना॥ ४७५-५,२
परम धरम स्रुति बिदित अहींसा।
परनिंदा सम अघ न गिरीसा॥
हरि - गुरु - निंदक दादुर होई।
जनम सहस्र पाव तन सोई॥
द्विजनिंदक बहु नरक भोग करि।
जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर-स्रुति-निंदक जे अभिमानी।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥

होहिं उलूक संत निंदारत।
मोहनिसा प्रिय ग्यान भानुगत ॥
सबके निंदा जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥ ५०४-९ से १०

(४) श्रद्धा और विश्वास—

श्रद्धा बिना धरमु नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥ ४८३-१
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। ४८३-१६,१

(५) सन्तोष और शील—

उदित अगस्त पंथ जल सोखा।
जिमि लोभहि सोखइ संतोषा ॥ ३३५-२२
कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिय ॥
बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥ ४८३-१०से१२
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई।
जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं ॥ ४८३-१७

(६) सेवाधर्म—

सेवक सो जो करइ सेवकाई। १२५-७,१
करइ स्वामिहित सेवकु सोई।
दूषन कोटि देइ किन कोई ॥ २४२-१२
सिरभर जाउँ उचित अस मोरा।
सबतें सेवक धरमु कठोरा ॥ २४६-३

जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू।
हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥ २६८-११

जो सेवकु साहिबहिं सँकोची।
निजहित चहइ तासु मति पोची॥
सेवकहित साहिब सेवकाई।
करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥ २७३-२६,२७

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई।
सो सेवक लखि लाज लजाई॥ २७४-११

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू।
बइरु अंधु प्रेमहि न प्रबोधू॥ २८३-१४,१५

सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जनु पावइ देवा॥ २९१-८,९

सेवक सुत पितु मातु भरोसे।
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥ ३१६-११

भानु पीठि सेइअ उर आगी।
स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥ ३३८-१४

सबके प्रिय सेवक यह नीती।
मोरे अधिक दास पर प्रीती॥ ४५१-१४ *

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुसासन मानइ जोई॥ ४६२-२२ *

---

* ये भगवद्-वाक्य हैं।

(७) परहित व्रत—

तदपि करब मैं काज तुम्हारा ।
स्रुति कह परम धरम उपकारा ॥
परहित लागि तजइ जो देही ।
संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥ ४३-४,५

परहित बस जिन्हके मन माहीं ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
परहित सरिस धरमु नहिं भाई ।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निरनय सकल पुरान बेदकर ।
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥ ४६१-२०,२१

कबहुँ कि दुख सबकर हित ताके ।
तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ॥ ४३१-२२

(८) सत्सङ्ग—

सोइ भरोस मोरे मन आवा ।
केहि न सुसंग बड़प्पन पावा ॥
धूमउ तजइ सहज करुआई ।
अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ॥ ६-८,६

(९) अधार्मिक ही शोचनीय है—

सोचिय बिप्र जो बेदबिहीना ।
तजि निज धरम बिषय लवलीना ॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना ।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥

सोचिय बयसु कृपिन धनवानू।
जो न अतिथि सिव भगत सुजानू॥
सोचिय सूद्र बिप्र अपमानी।
मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिय पुनि पतिबंचक नारी।
कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई।
जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥
सोचिय गृही जो मोहबस करइ करमपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग॥
बैखानस सोइ सोचन जोगू।
तप-बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी।
जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी॥
सबबिधि सोचिय पर अपकारी।
निज तनुपोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई।
जो न छाड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। ⎧ २३६-२५
भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥ ⎩ २३७-१से१२
इमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रह न तेज तन बुधि लवलेसा॥ ३१६-१
हरित भूमि तिन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंडबाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ ३३९-२०३

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी॥ ३६२-२५

(१०) धर्म के लिए व्यक्तिस्वातन्त्र्य--

सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जौ तुम्हहिं सुहाई॥ ४६२-२०, २१
जौं अनीति कछु भाषउँ भाई।
तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई॥ ४६२-२२

विवेक (ज्ञान-सिद्धान्त)—

(१) ब्रह्म क्या है—

ब्रह्म ग्यानरत मुनि बिग्यानी।
मोहि परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा।
अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा।
अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अबिनासी।
निरबिकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं, ताहि तोहि नहिं भेदा।
बारि-बीचि इव गावहिं बेदा॥४३६-७से८

निर्गुण ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार क्यों नहीं होता—

पुरइनि सघन ओट जलु बेगि न पाइय मर्म ।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३२२-१६,२०

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण बनकर शोभायमान होता है—

फूले कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा ॥३३६-६

वही मायाप्रेरक शिव है—

बंध मोच्छप्रद सर्ब पर मायाप्रेरक सीव ॥३०८-२

जो माया सब जगहि नचावा ।
जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा ।
नाच नटी इव सहित समाजा ॥४७९-१,२

(२) जीव क्या है—

हरष बिषाद ग्यान अग्याना ।
जीव धरम अहमिति अभिमाना ॥५६-११

मायाईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव ।३०८-२

ग्यान अखंड एक सीतावर ।
मायाबस्य जीव सचराचर ॥
जौं सबके रह ग्यान एकरस ।
ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
मायाबस्य जीव अभिमानी ।
ईसबस्य माया गुनखानी ॥

परबस जीव स्वबस भगवंता।
जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया।
बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥४७७-२४से२८
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥४६६-२२
ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो मायाबस भयेउ गोसाईं।
बँधेउ कीर मरकट की नाईं॥५००-९,१०

वह शरीर के साथ नष्ट होनेवाली वस्तु नहीं है—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥३३३-१७,१८
जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥४६९-१,२

उसकी मलिनता का कारण है माया—

भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहि माया लपटानी॥३३४-२९

(३) यह माया क्या है—*

जासु सत्यता तें जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥

---

* माया में न केवल विवर्तरचना सामर्थ्य (विद्या) है, वरं वह विवर्त में सत्प्रतीतिस्थापन सामर्थ्य (अविद्या) भी रखती है। राम की

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

एहि बिधि जग हरि आस्रित रहई ।
जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटइ कोई ।
बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥५१-२२से२६

थोरेहि महुँ सब कहउँ बुझाई ।
सुनहु तात मति मनु चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहि बस कीन्हे जीवनिकाया ॥
गोगोचर जहँ लगि मनु जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा ।
जा बस जीव परा भवकूपा ॥

माया प्रबल होगी ही; क्योंकि वह ब्रह्म की माया है । परन्तु ब्रह्मांश होने के कारण सुर और असुर भी माया की शक्ति रखते हैं । देखिए—

बिस्वमोहिनी तासु कुमारी । स्री बिमोह जिहु रूप निहारी ।
सोइ हरिमाया सब गुनखानी । सोभा तासु कि जाय बखानी ॥६५-१,२
सुर मायाबस बैरिनिहि सुहृद जानि पतियानि ॥१७६-१५
बिधि हरिहर माया बड़ि भारी । सोउ न भरत मति सकइ निहारी ।२८४-५

जासु प्रबल माया बिबस सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ॥ ३१७-१७,१८

एक रचइ जग गुन बस जाके।
प्रभुप्रेरित, नहिं निज बलु ताके॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।
देख ब्रह्म समान सब माहीं॥३०-२२से२८

सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक॥४६२-६,७

इसकी वास्तविकता कैसी है—

जोग बियोग, भोग भल मंदा।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू।
संपति बिपति करमु अरु कालू॥
धरनि, धामु धनु पुर परिवारू।
सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं।
मोह मूल परमारथु नाहीं॥

सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंचु जिय जोइ॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू।
काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। } २०५-२५से१८
परमारथी प्रपंच बियोगी॥ } २०६-१से५

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजनु जगत सब सपना ॥३२२-१९
सत्रु मित्र सुखु दुखु जग माहीं।
मायाकृत परमारथ नाहीं ॥३३१-१८
सपने जेहि सन होइ लराई।
जागे समुझत मन सकुचाई ॥३३१-२०
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदय बिचारि ॥४१०-१८

परन्तु यह कह देना जितना आसान है, जान लेना उतना ही कठिन—

अति प्रचंड रघुपति कै माया।
जेहि न मोह अस को जग जाया ॥६४-१०
मुनि नारदहिं लागि अति दाया।
सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥
जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई।
बरिआईं बिमोह मन करई ॥४६९-८,९
हरिमाया कर अमित प्रभावा।
बिपुल बार जेहि मोहिं नचावा ॥४६९-१८
प्रभु माया बलवंत भवानी।
जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ॥
ग्यानी भगतसिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पाँवर करहिं गुमान ॥
सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को हइ बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान ॥४७०-१८से२२

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ।
को जग काम नचाव न जेही ॥
तृसना केहि न कीन्ह बौरहा ।
केहि कर हृदय क्रोध नहिं दहा ॥
ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुनआगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहि संसार ॥
स्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नयनसर को अस लाग न जाहि ॥
गुनकृत सन्निपात नहिं केही ।
कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जोबनज्वर केहि नहिं बलकावा ।
ममता केहि कर जसु न नसावा ॥
मच्छर काहि कलंक न लावा ।
काहि न सोकसमीर डोलावा ॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया ।
को जग जाहि न ब्यापी माया ॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा ।
जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोकईषना तीनी ।
केहिकै मति इन कृत न मलीनी ॥
यह सब माया कर परिवारा ।
प्रबल अमित को बरनइ पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं ।
अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥४७४-७से२४

माया की विशेष प्रबलता उसके त्रिशूल के कारण है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यानधाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥
लोभ के इच्छा दंभ बलु काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बलु मुनिबर कहहिं बिचारि॥३२२-७से१०

जो आपन चाहहि कल्याना।
सुजस सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलारु गोसाईं।
तजइ चौथि के चंद कि नाईं॥
चौदह भुवन एक पति होई।
भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुनसागर नागर नर जोऊ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरही भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३६१-१२से१७

काम—लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्हके जग लीका॥
एहि के एक परम बलु नारी।
तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥३२२-५,६

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार ।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥४२०-५,६

बिनु संतोष न काम नसाहीं ।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
रामभजनु बिनु मिटहि कि कामा ।
थलबिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥४८३-१२,१३
कामी पुनि कि रहहि अकलंका ।४६६-२४।२
सुभ गति पाव कि परत्रियगामी ॥४६६-२६।२

क्रोध—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥१२८-१,२
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी ।
करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥३३५-७

लोभ—काटत बढ़हिं सीस समुदाई ।
जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥४२६-७

माया के प्रहार का परिणाम क्या होता है ?—

करहिं मोहबस नर अघ नाना ।
स्वारथरत परलोक नसाना ॥
कालरूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता ।
सुभ अरु असुभ करम फलदाता ॥४६२-१,२
आकर चारि लच्छ चौरासी ।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा ।
काल करमु सुभाउ गुन घेरा ॥४६३-६,७

यह प्रहार होता ही क्यों है ?—

प्रभु की इच्छा से—होइहि सोइ जो राम रचि राखा ।
को करि तरक बढ़ावइ साखा ॥३०-११

बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥६२-२०,२१

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई ।
करइ अन्यथा अस नहिं कोई ॥६४-३

अपने अज्ञान से—सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक ॥४६२-६,७
द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध कि द्वैत कि बिनु अग्यान ॥४६६-२१

प्रभु की इच्छा का रहस्य क्या है ?—

जो अति आतप ब्याकुल होई ।
तरु छाया सुख जानइ सोई ॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही ।
मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥४७३-१७,१८

यह माया किस प्रकार छिन्नभिन्न होती है—

सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल ।
अस बिचारि मन माहिं, भजिय महामायापतिहिं ॥६६-१,२

रघुपतिबिमुख जतन कर कोरी ।
कवन सकइ भवबंधन छोरी ॥
जीव चराचर बस कै राखे ।
सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥

भृकुटिबिलास नचावहि ताही ।
अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही ॥६४-२३से

क्रोध मनोज लोभ मद माया ।
छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला ।
जापर होइ सो नट अनुकूला ॥३२२-१३·१

नाथ जीव तव माया मोहा ।
सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ॥३२६-६

अतिसय प्रबल देव तव माया ।
छूटइ राम करहु जौं दाया ॥३३७-२०

(४) मोक्ष क्या है—

तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥३२१-३

मोक्ष क्यों अभीष्ट है—

मोच्छ सकल सुखखानि ।

मोक्ष का साधन क्या है—

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥३०८-४,२

यह ज्ञान कैसे आता है—

जोग तें ग्याना ॥३०८-४,१

उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि पाइ सुसंग कुसंग ।
बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ॥४८३-८

योगबल की कैसी महिमा है—

पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी ।
मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥३८९-१०

तुम्हहिं न व्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ग्यानप्रभाव कि जोगुबल ॥४८९-२३,२४

परन्तु हरिभक्तिहीन योग को कुयोग ही समझना चाहिए—

सोह न रामप्रेम बिनु ग्यानू।
करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥२७७-१९
सो सुखु धरमु करमु जरि जाऊ।
जहँ न रामपदपंकज भाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू।
जहँ नहिं रामप्रेमु परधानू ॥२८२-१४,१५

ऐसे भक्तिहीन योगप्रधान ज्ञानमार्ग की जटिलता देखिए, यद्यपि यह ठीक है कि ऐसे मार्ग से भी 'घुणाक्षरन्याय से' कैवल्य मुक्ति मिल जाती है—

जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब तें जीव भयेउ संसारी।
छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह बिसेखी।
ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥
अस संयोग ईस जब करई।
तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥

सात्त्विक स्रद्धा धेनु सुहाई।
जो हरि कृपा हृदय बसि आई॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा।
जे स्रुति कहु सुभ धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरइ जब गाई।
भाव बच्छ सिसु पाइ पन्हाई॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा।
निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरममय पय दुहि भाई।
अवटइ अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तव छमा जुड़ावइ।
धृति सम जावन देइ जमावइ॥
मुदिता मथइ बिचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब करम सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावइ ग्यान घृत ममतामल जरि जाइ॥
तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरइ दृढ़ समता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करइ सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसइ दीप, तेजरासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतमअनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा।
उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा॥
छोरन ग्रंथि पाव जौ सोई।
तौ यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया।
बिघन अनेक करइ तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई।
बुद्धिहि लोभ देखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाइ समीपा।
अंचल बात बुझावहिं दीपा॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी।
तिन्ह तनु चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी।
तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना।
तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी।
ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई।
तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा।
बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सुहाई।
बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी।
तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

ग्यान पंथ कृपान कै धारा।
परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौं निरबिघन पंथ निरबहई।
सो कैवल्य परमपद लहई॥

५००-११से२५
५०१-१से२६
५०२-१,२

सच्चे ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग में तो कोई अन्तर ही नहीं—

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥४६६-१५

(५) सद्ज्ञान की पहचान और उपयोगिता क्या है—

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके।
ग्यान बिराग हृदय नहिं जाके॥६४-१२

जानिय तबहिं जीव जब जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥२०६-६

बरसहिं जलद भूमि नियराये।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाये ॥३३४-२२

नव पल्लव भये बिटपु अनेका।
साधक मन जस मिले बिबेका ॥३३५-५

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥३३५-११

रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥३३५-२४

ज्ञान की उपयोगिता और महत्ता क्या है—

भये ग्यान बरु मिटइ न मोहू।
तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥२३५-२०

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।
जिमि इन्द्रियगन उपजे ग्याना ॥३३५-१५

भयेउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं।
ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं ॥३३५-१४

बिनु बिग्यान कि समता आवइ।
कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥४८३-१४

भव कि परहिं परमातमबिंदक ॥४३६-२७,१

कहहिं संत मुनि बेद पुराना ॥
नहिं कछु दुरलभ ग्यान समाना ॥४३६-११

ज्ञानी का महत्त्व क्या है—

> नारि - नयन - सर जाहि न लागा ।
> घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
> लोभपास जेहि गर न बँधाया ।
> सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥३३७-२२,२३

परन्तु ऐसी सिद्धि का श्रेय भी हरिकृपा को है, न कि योग-साधन को—

> यह गुन साधन तें नहिं होई ।
> तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥३३७-२४

उत्तरार्द्ध

हरिभक्ति-पथ (भक्ति-सिद्धान्त)

(१) भक्ति की रूपरेखा

परिभाषा—जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥३०८-५

भक्ति से लाभ—सकल सुमंगलमूल जग रघुबरचरनसनेहु ॥२५०-२०
सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात ॥२१०-१२

जोगिबृन्द दुर्लभ गति जोई।
तोकहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फलु परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा ॥३२०-२३,२४
सरिताजल जलनिधि महुँ जाई।
होहिं अचल जिमि जिव हरि पाई ॥३३५-१

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ स्रम तजहिं आस्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरिसरन न एकउ बाधा ॥३३६-३से५

सुरदुर्लभ सुख करि जग माहीं।
अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥४५०-२४

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा।
बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा ॥४८३-४

गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहहिं हरिभगति बिनु ॥४८३-६

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।
परस कि होइ बिहीन समीरा ॥४८३-१८

बिनु हरिभजन न भवभय नासा ॥४८३-१६,२

अघ कि रहहिं हरिचरित बखाने ॥४६७-१,२

जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥४६८-१३

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥५०५-२२,२३

भक्ति (भगवत्-प्राप्ति) ही से जीवन की सार्थकता है—

उपरोहिती करम अति मंदा।
बेद पुरान सुमृति कर निंदा ॥
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही।
कहा लाभ आगे सुत तोही ॥
परमातमा ब्रह्म नररूपा।
होइहि रघुकुल - भूषन भूपा ॥

तब मैं हृदय बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जाकहुँ करिय सो पइहउँ धरमु न एहिसम आन ॥४६४-२१से२५

भक्ति ही परम सिद्धान्त है—

सखा परम परमारथु एहू।
मन क्रम बचन रामपद नेहू ॥२०६-८
सिव अज सुक सनकादिक नारद।
जे मुनि ब्रह्म - बिचार - बिसारद ॥
सब कर मत खगनायक एहा।
करिय राम - पदपंकज - नेहा ॥५०५-१०,११
स्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।
राम भजिय सब काज बिसारी ॥५०६-२

भक्ति ही परम प्राप्य है—

लाभु कि कछु हरिभगति समाना।
जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना ॥
हानि कि जग एहि सम कछु भाई।
भजिय न रामहिं नरतनु पाई ॥४६७-३,४

भक्ति कितनी सुगम है—

कहहु भगतिपथु कवन प्रयासा।
जोगु न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथालाभ संतोष सदाई ॥४६३-२३,२४
भगति करत बिनु जतन प्रयासा।
संसृति - मूल अबिद्या नासा ॥

भोजन करिय तृप्ति हित लागी ।
जिमि सो असन पचवइ जठरागी ॥
असि हरिभगति सुगम सुखदाई ।
को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥२०२-८से१०

परन्तु साथ ही कितनी दुष्प्राप्य है—

जनम जनम मुनि जतनु कराहीं ।
अंत राम कहि आवत नाहीं ॥३३-१
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी ।
कोउ एक पाव भगति जसि मोरी ॥३६-२
नर सहस्त्र महुँ सुनहु पुरारी ।
कोउ एक होइ धर्मब्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई ।
बिषयबिमुख बिरागरत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई ।
सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ ।
जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुखखानी ।
दुरलभ ब्रह्मलीन बिग्यानी ॥
धरमसील बिरक्त अरु ग्यानी ।
जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥

सबतें सो दुरलभ सुरराया।
रामभगतिरत गत मद माया ॥४६७-१से७
सो रघुनाथभगति स्रुति गाई।
रामकृपा काहू एक पाई ॥१०७-२२

उसको सुरम्य बनाने का नुस्खा कैसा सरल है—

मुनिदुरलभ हरिभगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ॥१०७-२३,२४

(२) भक्ति के साधन

सप्त सोपान—भगति तात अनुपम सुखमूला।
मिलइ जो संत होहिं अनुकूला ॥
भगति के साधनु कहउँ बखानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती।
निज निज करमनिरत स्रुतिरीती ॥
यहिकर फलु मनु बिषयबिरागा।
तब मम चरन उपज अनुरागा ॥
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं।
मम लीलारति अति मन माहीं ॥
संतचरनपंकज अति प्रेमा।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा।
सब मोहि कहँ जानइ दृढ़ सेवा ॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके।
तात निरंतर बस मैं ताके॥
बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निहकाम।
तिन्हके हृदयकमल महुँ करउँ सदा बिस्राम ॥२०८-८से१७

<u>नवधा भक्ति</u>—नवधाभगति कहउँ तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरुपदपंकज-सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजनु सो बेद प्रकासा॥
छठ दमसीलु बिरति बहु कर्मा।
निरत निरंतर सज्जनु धर्मा॥
सातव सम मोहिमय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठव जथा लाभ संतोषा।
सपनेहु नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नवमहुँ एकउ जिन्हके होई।
नारि पुरुष सचराचर गोई॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे ।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥ ३ २०-१ २से ९ १

चतुर्दश भाव—सुनहु राम अब कहउँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लषन समेता ॥
जिन्हके स्त्रवन समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाखे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी ।
रूपबिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदयसदन सुखदायक ।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥
जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु ॥
प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा ।
सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निबेदित भोजनु करहीं ।
प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं रामपद पूजा ।
रामभरोस हृदय नहिं दूजा ॥

चरन रामतीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा ।
पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना ।
बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिय जानी ।
सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥

सबु करि माँगहिं एकु फलु रामचरनरति होउ ।
तिन्हके मनमंदिर बसहु सियरघुनंदन दोउ ॥

काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्हके हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी ।
धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं परसंपति देखी ।
दुखित होहिं परबिपति बिसेखी ॥

जिन्हहिं राम तुम प्रानपियारे।
तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्हके सब तुम तात।
मनमंदिर तिन्हके बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥
अवगुन तजि सबके गुन गहहीं।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्हकइ जग लीका।
घर तुम्हार तिन्हकर मनु टीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
रामभगत प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदनु सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई।
तेहिके हृदय रहउ रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा।
राम करहु तेहिके उर डेरा॥
जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥
एहि बिधि मुनिबर भवन देखाये। } २२०-१से२८
बचन सप्रेम राम मन भाये॥ } २२१-१से११

तन मन वचन—

(क) उपयुक्त तन—

तजउँ न तनु निज इच्छा मरना ।
तनु बिनु बेद भजनु नहिं बरना ॥४८६-१६

चरम देह द्विज कै मैं पाई ।
सुर दुरलभ पुरान स्रुति गाई ॥४६९-७

(ख) उपयुक्त मन (भाव)—

सुर साधु चाहत भावसिंधु कि तोष जलअंजलि दिये ॥ १९१-२

रामहिं केवल प्रेमु पियारा ।
जानि लेउ जो जाननिहारा ॥३२३-७

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम ।
रामकृपा नहिं करहिं तसि जसि निहकेवल प्रेम ॥४३६-६,७

रामकृपा बिनु सुनु खगराई ।
जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होय नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥४८३-९से७

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम ॥४८३-२०,२१

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि ।
भजहु रामपदपंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥५०२-११,१२

(ग) उपयुक्त वचन—

चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेष नहिं आन उपाऊ ॥१६-३

मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा।
हरषित राममंत्र तब दीन्हा ॥४३७-२१

ज्ञान-वैराग्य—होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥२०६-७

सुख संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥
ए सब राम भगति के बाधक।
कहहिं संत तव पद अवराधक ॥३३१-१६,१७

भगति सुतंत्र सकल सुखखानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।
सतसंगति संसृति कर अंता ॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्रपदपूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा।
जो तजि कपटु करइ द्विजसेवा ॥

अउरउ एक गुपुत मत सबहिं कहहुँ कर जोरि।
संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥४६३-१७से२२*

---

* यहाँ विप्रपदपूजा ज्ञान के लिए और शंकर-भजन वैराग्य के लिए है।

चतुरसिरोमनि तेइ जग माहीं।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई।
रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाइ पाइबे केरे।
नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥
पावन परबत बेद पुराना।
रामकथा रुचिराकर नाना॥
मरमी सज्जन सुमति कुदारी।
ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोदइ जो प्रानी। } ५०२-२४ से २७
पाव भगति मनि सब सुखखानी॥ } ५०३-१, २*

बिरति चरम असि ग्यानमद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥ ५०३-६, १०

सत्सङ्ग

(अ) सुसङ्ग-कुसङ्ग—

गुन अवगुन जानत सब कोई।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु॥

---

* यहाँ भक्तिमणि की प्राप्ति ज्ञान और वैराग्यरूपी नयनों के साधन द्वारा बताई गई है।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा ।
उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने ।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाये ।
गनि गुन दोष बेद बिलगाये ॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना ।
बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना ॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती ।
साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू ।
अमिअ सजीवनु माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा ।
लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा ।
मरु मालव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा ।
निगम अगम गुन दोष बिभागा ॥

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संतहंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता । } ६-७ से २०
तब तजि दोष गुनहि मनुराता ॥ } ७-१
हानि कुसंग सुसंगति लाहू ।
लोकहु बेद बिदित सब काहू ॥

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा
कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारी ।
सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी ॥
धूम कुसंगति कारिख होई ।
लिखिय पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता ।
होइ जलद जग जीवनदाता ॥
ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ७-८से१४

कबहुँ दिवस महुँ निबिड़तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥ ३३९-१८,१६

संत असंतन के गुन भाखे ।
ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥ ४६२-९

(आ) कुसंग (जिसे छोड़ना है)—

संत संभु श्रीपति अपवादा ।
सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई ।
स्रवन मूँदि नत चलिय पराई ॥ ३९-१,२
को न कुसंगति पाइ नसाई ।
रहइ न नीचमते चतुराई ॥ १७६-१४
बरु भल बास नरक कर ताता ।
दुष्टसंग जनि देइ बिधाता ॥ ३६४-१६

हरि-हर निंदा सुनइ जो काना ।
होइ पाप गोघात समाना ॥ ३८७-२०

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ ।
भूलेहु संगति करिय न काऊ ॥
तिन्हकर संग सदा दुखदाई ।
जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई ॥ ४६१-५,६

जेहिं ते नीच बड़ाई पावा ।
सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ॥
धूम अनलसंभव सुनु भाई ।
तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मगु परी निरादर रहई ।
सबकर पगप्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई ।
पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा ।
बुध नहिं करहिं अधम कर संगा ॥
कबि कोबिद गावहिं अस नीती ।
खल सन कलह न भल सन प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गोसाईं ।
खल परिहरिअ स्वान की नाईं ॥ ४६२-६से१५

(इ) सुसंग (जो संग्राह्य है)—

सुनि आचरज करइ जनि कोई ।
सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥

बालमीकि नारद घटजोनी ।
निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना ।
जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई ।
जो जेहि जतन जहाँ जब पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहु बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई ।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगल मूला ।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पारस परसि कुधातु सोहाई ॥
बिधिबस सुजन कुसंगति परहीं । } ४-१६से२२
फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥ } ५-१,२
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू ।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिय तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ ३४७-११,१२
अब मोहि भा भरोस हनुमंता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥ ३४८-९
संतसंग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कबि कोबिद स्रुति पुरान सद्ग्रंथ ॥ ४९९-४,५

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा ।
किये जोग जप ग्यान बिरागा ॥ ४७०-७ से ६
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥ ४७३-२१
सब कर फल हरिभगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा ।
रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥ ५०३-५,६
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं ।
संत मिलन सम सुख कहुँ नाहीं ॥ ५०३-२२
सतसंगति दुरलभ संसारा ।
निमिष दंड भरि एकउ बारा ॥ ५०६-६

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरिकृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥ ५०७-१३,१४

(द) तीर्थ (जो सत्संग के साधन हैं)

अवध—दरस परस मज्जन अरु पाना ।
हरइ पाप कह बेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति ।
कहि न सकइ सारदा बिमलमति ॥
राम - धामदा पुरी सुहावनि ।
लोक समस्त बिदित जगपावनि ॥

चारि खानि जग जीव अपारा ।
अवध तजे तन नहिं संसारा ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी ।
सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी ॥ २२-४से८
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि ।
त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि ॥ ४३७-२०
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना ।
बेद पुरान बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ॥
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जनमभूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा ।
मम समीप नर पावहिं बासा ॥
अति प्रिय मोहिं इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुखरासी ॥ ४४३-२१से२५
कवनेहु जनम अवध बस जोई ।
रामपरायन सो पर होई ॥
अवध प्रभाव जान तब प्रानी ।
जब उर बसहिं राम धनुपानी ॥ ४८७-८,९

चित्रकूट—सुरसरि धार नाउँ मन्दाकिनि ।
जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥ २२१-१६
नदी पनच सर सम दम दाना ।
सकल कलुष कलिसाउज नाना ॥

चित्रकूट जनु अचलु अहेरी ।
चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥ २२१-२३,२४
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी ।
होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥
कहत कूप महिमा सकल गये जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥ २१०-१से३

गंगा-यमुना—गंग सकल मुद मंगल मूला ।
सब सुखकरनि हरनि सब सूला ॥ २०४-१
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू ।
सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर माँगहुँ एहू ।
सीयरामपद सहज सनेहू ॥२४६-१७,१८
बहुरि राम जानकिहि देखाई ।
जमुना कलिमल हरनि सुहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता ।
राम कहा प्रनामु करु सीता ॥ ४३७-१६,१७

प्रयाग—छेत्रु अगमु गढ़ु गाढ़ु सुहावा ।
सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बरबीरा ।
कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा ।
छत्रु अषयबटु मुनि मनु मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा ।
देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥

सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।
बंदी बेद पुरानगन कहहिं बिमल गुनग्राम ॥

को कहि सकइ प्रयाग-प्रभाऊ ।
कलुष - पुंज - कुंजर - मृगराऊ ॥ २११-१से७

सकल कामप्रद तीरथराऊ ।
बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥ २४६-१२

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा ।
निरखत जनम कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी ।
हरनि सोक हरिलोक निसेनी ॥ ४३७-१८,१६

रामेश्वर—जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं ।
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि ।
सो साजुज्य मुकुति नर पाइहि ॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि ।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही ।
सो बिनु स्रम भवसागर तरिही ॥३७४-११से१४

काशी—आकर चारि जीव जग अहहीं ।
कासी मरत परमपद लहहीं ॥ २७-१६

मुकुति जनमु महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ॥ ३२८-३,४

नैमिषारण्य—तीरथ बर नैमिष बिख्याता ।

अति पुनीत साधक सिधिदाता ॥ ६१-२४

सद्धाम—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।

नवलतुलसिकाबृंद तहँ देखि हरष कपिराय ॥ ३४७-२१,२२

तीर्थ-माहात्म्य सुनकर कोई यह न समझ ले कि उसे तीर्थ-यात्रामात्र से निष्पापात्मा होने का पट्टा मिल जायगा । इसी लिए गोस्वामीजी का कहना है—

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप ।

काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥ ४२२-२३,२४

(३) भक्ति की श्रेष्ठता

भक्ति ज्ञान से भी श्रेष्ठ है—

सो सुतंत्र अवलम्ब न आना ।

तेहि आधीन ग्यान बिज्ञाना ॥ ३०८-६

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा ।

भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

करउँ सदा तिन्हकै रखवारी ।

जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।

तहँ राखइ जननी अरु गाई ॥

प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता ।

प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी ।

बालक सुत सम दास अमानी ॥

जनहि मोर बलु निज बलु ताही ।
दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं ।
पायेहु ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥ ३२४-८ से १४
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू ।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारगु यह भाई ।
भगति मोरि पुरान स्रुति गाई ॥
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका ।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ ।
भगतिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ ॥ ४६३-१३से१६
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई ।
एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥
बयरु न बिग्रह आस न त्रासा ।
सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥ ४६३-२६,२७
मम माया संभव परिवारा ।
जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये ।
सब तें अधिक मनुज मोहि भाये ॥
तिन्हमहँ द्विज द्विज महँ स्रुतिधारी ।
तिन्हमहँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन्हमहँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी ।
ग्यानिहुँ तें अति प्रिय बिग्यानी ॥

तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भगतिहीन बिरंचि किन होई।
सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥

एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सरबग्य धरमरत कोई।
सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितुभगत बचन मन करमा।
सपनेहु जान न दूसर धरमा॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना।
जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते।
त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मम उपजाया।
सब पर मोहि बराबर दाया॥

तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया ।
भजइ मोहि मन बच अरु काया ॥
पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥
सत्य कहउँ खग तोहिं सुचि सेवक मम प्रानप्रिय । ⎰ ४८१-१४से२४
अस बिचारि भजु मोहिं परिहरि आस भरोस सब ॥ ⎱ ४८२-१ से१२
ग्यान बिराग जोग बिग्याना ।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती ।
अबला अबल सहज जड़ जाती ॥
पुरुष त्यागि सक नारिहिं जो बिरक्त मतिधीर ।
नतु कामी जो बिषयबस बिमुख जो पद रघुबीर ॥
सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधुमुख निरखि ।
बिकल होहिं हरिजान नारि बिस्व माया प्रगट ॥
इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ ।
बेद पुरान संतमत भाखउँ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा ।
पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ ।
नारिबर्ग जानहिं सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी ।
माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया ।
तातें तेहि डरपति अति माया ॥

रामभगति निरुपम निरुपाधी ।
बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई ।
करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥

अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी । ⎫ ४६६-१५ से २७
जाचहिं भगति सकल सुखखानी ॥ ⎭ ५००-१ से ३

अउरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जो सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन ॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी ।
समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥ ५००-६ से ८

× × ×

कहेउँ ग्यान सिद्धान्त बुझाई ।
सुनहु भगतिमनि कै प्रभुताई ॥
रामभगति चिंतामनि सुंदर ।
बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ॥
परम प्रकासरूप दिन राती ।
नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अबिद्यातम मिटि जाई ।
हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ॥

गरल सुधा सम अरि हित होई ।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी ।
जिन्हके बस सब जीव दुखारी ॥
रामभगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥

परन्तु यह न भूलना चाहिए कि भक्तियुक्त ज्ञान को गोस्वामीजीने पूरा मान दिया है—

रामभगत जग चारि प्रकारा ।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा ।
ग्यानी प्रभुहिं बिसेषि पियारा ॥ १६-१,२

भक्ति मुक्ति का प्रधान आधार होकर भी मुक्ति से श्रेष्ठ है—

राउर बदि भल भव दुख दाहू ।
प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥ २६१-८

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति ॥ ४८२-२२,२३

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद ।
संत पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं ।
अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई ।
कोटि भाँति कोउ करइ उपाई ॥

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई ।
रहि न सकइ हरिभगति बिहाई ॥
अस बिचारि हरिभगत सयाने ।
मुकुति निरादर भगति लोभाने ॥ ५०२-३ से ७

भक्ति ही सब साधनों का फल है—

बेद पुरान संत मत एहू ।
सकल सुकृत फल रामसनेहू ॥ १७-२०

साधन सिद्धि राम पग नेहू ।
मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥ २८१-१

जप तप नियम जोग निज धरमा ।
स्रुति संभव नाना सुभ करमा ॥
ग्यान दया दमु तीरथ मज्जन ।
जहँ लगि धर्म कहत स्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका ।
पढ़े सुने कर फलु प्रभु एका ॥
तव पदपंकज प्रीति निरंतर । ४६४-२६से२८
सब साधन कर यह फलु सुंदर ॥ ४६५-१
जप तप मख सम दम ब्रत दाना ।
बिरति बिबेक जोग बिग्याना ॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा ।
तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥ ४८६-७,८
तीर्थाटन साधन समुदाई ।
जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥

नाना करम धरम व्रत दाना ।
संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई ।
बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन बेद बखाना ।
सब कर फल हरिभगति भवानी ॥ ५०७-१८से२१

भक्ति के विना सब साधन शून्य हैं—

करम बचन मनु छाँड़ि छलु जब लगि जन न तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं किएँ कोटि उपचार ॥२११-२५-२६

बादि बसन बिनु भूषन भारू ।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा ।
बिनु हरिभगति जाय जप जोगा ॥ २३६-१२-१३

तात बात फुरि राम कृपाहीं ।
रामबिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥ २६६-६

मातु मृत्यु पितु समन समाना ।
सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥
मित्र करइ सत रिपु कै करनी ।
ताकहुँ बिबुध नदी बैतरनी ॥
सब जगु तेहि अनलहु तें ताता ।
जो रघुबीरबिमुख सुनु भ्राता ॥२६६-१८से२०
रामनाम बिनु गिरा न सोहा ।
देखु बिचारि त्यागि मदु मोहा ॥

बसनहीन नहिं सोह सुरारी ।
सब भूषन भूषित बर नारी ॥
रामबिमुख संपति प्रभुताई ।
जाइ रही पाई बिनु पाई ॥
सरित मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं ।
बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥ ३५५-३से६

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ सोकधाम तजि काम ॥

तब लगि हृदय बसत खल नाना ।
लोभ मोह मत्सर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा ।
धरे चापसायक कटि भाथा ॥
ममता तरुन तमी अँधियारी ।
राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं ।
जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥ ३६४-१८से२३
सुनु सठ भेद होइ मन ताके ।
श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके ॥ ३८२-२२
बेद पुरान जासु जस गावा ।
रामबिमुख काहु न सुख पावा ॥

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहु मन बिस्राम ।
भूतद्रोहरत मोहबस रामबिमुख रतकाम ॥ ४११-८,६

छूटइ मल कि मलहि के धोये ।
घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये ॥

प्रेम भगति जलु बिनु रघुराई।
अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥ ४६९-२,३

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिखान॥

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥

ऐसेहि बिनु हरिभजन खगेसा।
मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥ ४७८-१ से ५

भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे।
लवन बिना बहु ब्यंजन जैसे॥ ४८०-१७

जे असि भगति जानि परिहरहीं।
केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
सुनु खगेस हरिभगति बिहाई।
जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी।
पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥ ४९९-३ से ६

स्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
कमठ पीठि जामहिं बरु बारा।
बंध्यासुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला।
जीव न लह सुख हरिप्रतिकूला॥

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना ।
बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥
अंधकार बरु रबिहि नसावइ ।
रामबिमुख न जीव सुख पावइ ॥
हिम तें अनल प्रगट बरु होई ।
बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरिभजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल ॥ ५०१-१२से१६

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी ।
कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी ।
धर्मनिरत पंडित बिग्यानी ॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी ।
राम नमामि नमामि नमामी ॥ ५०६-१७से१६

इसलिए भगवद्विमुख लोग नितान्त शोचनीय हैं—

जिन हरिकथा सुनी नहिं काना ।
स्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा ।
लोचन मोरपंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला ।
जे न नमत हरि गुरु पद मूला ॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहिं आनी ।
जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥

जो नहिं करइ रामगुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । ⎧ ५७-२४
सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥ ⎩ ५८-१से५
साधु समाज न जाकर लेखा ।
रामभगत महँ जासु न रेखा ॥
जाय जियत जग सो महि भारू ।
जननी जोबन बिटप कुठारू ॥ २४४-४,५
लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं ।
रामबिमुख थलु नरक न लहहीं ॥ २६८-२
सो सुखु धरमु करमु जरि जाऊ ।
जहँ न रामपद पंकज भाऊ ॥ २८२-१४
अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना ।
ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥ ३६५-२७
जीवनमुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान ।
जे हरिकथा न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥
स्रवनवंत अस को जग माहीं ।
जाहि न रघुपति चरित सुहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती ।
जिन्हहिं न रघुपति कथा सुहाती ॥ ४६६-२०,२१
रामबिमुख लहि बिधि सम देही ।
कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही ॥ ४८६-१७
नर तन सम नहिं कवनिउ देही ।
जीव चराचर जाचत जेही ॥

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी ।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर ।
होहिं बिषयरत मंद मंदतर ॥
काँचु किरिच बदले ते लेहीं ।
कर तें डारि परसमनि देहीं ॥ ४०३-१९से२२

और भगवद्भक्त ही धन्य हैं—

एहि बिधि राम जगत पितु माता ।
कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता ॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी ।
तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी ॥ ९४-२१,२२

भूरि भाग भाजन भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मनु छाँड़ि छलु कीन्ह रामपद ठाउँ ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई ।
रघुपतिभगतु जासु सुत होई ॥ १९८-२४से२६
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे ।
जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥ २१७-१
नयनवन्त रघुबरहिं बिलोकी ।
पाइ जनमफल होहिं बिसोकी ॥२२३-२७

कठिन काल मलकोस धरमु न ग्यानु न जोगु जपु ।
परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर ॥ ३०२-२२,२३
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रये ॥ ३२५-२२

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी ।
जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥ ३३८-१७

जामवंत कह सुनु रघुराया ।
जापर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर ।
सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ बिजई बिनई गुनसागर ।
तासु सुजस त्रयलोक उजागर ॥ ३५७-२०से२२

सोइ गुनसागर ईस रामकृपा जापर करहु ॥ ३८१-५

सोइ सरबग्य तग्य सोइ पंडित ।
सोइ गुनगृह बिग्यान अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई ।
जाके पदसरोज रति होई ॥ ४६५-४,५

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा ।
मन क्रम बचन रामपदनेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा ।
जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा ॥ ४८६-१५,१६

जो चेतन कहुँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समरथ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥ ५०२-१३,१४

सोइ सरबग्य गुनी सोइ ग्याता ।
सोइ महिमंडित पंडित दाता ॥
धरमपरायन सोइ कुलत्राता ।
रामचरन जाकर मन राता ॥
नीतिनिपुन सोइ परम सयाना ।
स्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥

सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा ।
जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा ॥
धन्य देस सो जहँ सुरसरी ।
धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई ।
धन्य सो द्विज निज धरमु न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी ।
धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा ।
धन्य जनम द्विज भगति अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत । ⎧ ५०७-२५,२६
श्रीरघुबीरपरायन जेहि नर उपज बिनीत ॥ ⎩ ५०८-१से८

इसी लिए भक्ति के विषय में स्पष्ट आदेश दिया गया है—

भवभंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥ ६२-२३

अस प्रभु दीनबंधु हरि कारनरहित दयाल ।
तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल ॥ १००-११,१२

निरखि राम सोभा उर धरहू ।
निज मन फनि मूरति मनि करहू ॥ १५६-१
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू ।
रामसीयपद सहज सनेहू ॥
राग रोष इरिषा मदु मोहू ।
जनि सपनेहुँ इनके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई ।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥ १६६-३से५

सखा समुझि अस परिहरि मोहू ।
सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥ २८६-१३

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥

जातिहीन अघ जनम महि मुकुत कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ ३२१-४से७

तजि माया सेइय परलोका ।
मिटहिं सकल भव संभव सोका ॥
देह धरे कर यह फलु भाई ।
भजिय राम सब काम बिहाई ॥ ३३८-१५,१६

रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु ॥ ३५२-२७

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी ।
बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिस्नु अज तोही ।
सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

मोह मूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान ॥ ३५५-७से१०

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥ ३६१-२६,२७

लवनिमेष परवानु जुग बरष कल्प सर चंड ।
भजसि न मन तेहि रामु कहुँ कालु जासु कोदंड ॥ ३७३-३,४

प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करहिंगे तोहि ॥ ३८२-१०,११

भजि रघुपति करु हित आपना ।
छाड़हु नाथ मृषा जलपना ।।
नीलकंज तनु सुंदर स्यामा ।
हृदय राखु लोचन अभिरामा ।।
मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू ।
महामोह निसि सूतत जागू ।। ३९९-१३से१५

अजहूँ तात त्यागि अभिमाना ।
भजहु राम होइहि कल्याना ।। ४०२-१६

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर ।
भजेहु राम सोभा सुखसागर ।।
बचन करम मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर । ४०३-१२,१३

निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम ।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं स्रीराम ।। ४०७-१,२

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सरबगत सरबहित जानि करेहु अति प्रेम ।। ४५१-१५,१६

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू ।
मन क्रम बचन धरम अनुसरेहू ।। ४५३-६

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं ।
बैठि परसपर इहइ सिखावहिं ।।
भजहु प्रनतप्रतिपालक रामहि ।
सोभासील रूप गुनधामहि ।।
जलज बिलोचन स्यामल गातहिं ।
पलक नयन इव सेवक त्रातहिं ।।

धृत सर रुचिर चाप तूनीरहिं ।
संत कंज बन रबि रनधीरहिं ॥
काल कराल ब्याल खगराजहिं ।
नमत राम अकाम ममताजहिं ॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहिं ।
मनसिज करि हरिजन सुखदातहिं ॥
संसय सोक निबिड़तम भानुहिं ।
दनुज गहन घन दहन कृसानुहिं ॥
जनकसुता समेत रघुबीरहिं ।
कस न भजहु भंजन भवभीरहिं ॥
बहु बासना मसक हिमरासिहि ।
सदा एक रस अज अबिनासिहि ॥
मुनिरंजन भंजन महिभारहि ।
तुलसिदास के प्रभुहि उदारहिं ॥ ४५७-१७से२६

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग ।
काय बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥ ४८१-१०,११

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही ।
सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥ ४८१-१३
कबहुँ काल नहिं ब्यापिहि तोहीं ।
सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहीं ॥ ४८२-१२

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥ ४८३-२२,२३
भावबस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन ।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन ॥ ४८५-१,२

एहि कलिकाल न साधन दूजा ।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं ।
संतत सुनिय रामगुन ग्रामहिं ॥
जासु पतितपावन बड़ बाना ।
गावहिं कबि स्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजिय मन तजि कुटिलाई ।
राम भजे गति केहि नहिं पाई ॥

पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥ ९०१-७से१४